यज्ञ-विमर्श

ओ३म्

डॉ० रामप्रकाश

॥ ओ३म् ॥

स्वाध्याय ग्रन्थमाला का सप्तम पुष्प

यज्ञ-विमर्श

[एक वैज्ञानिक अध्ययन]

लेखक :

डॉ० रामप्रकाश

एम०एस-सी० (आनर्ज), पी-एच०डी०

प्रोफेसर, रसायन-विभाग, पंजाब विश्वविद्यालय, चण्डीगढ़

पूर्व विज्ञान एवं तकनीकी राज्यमन्त्री, हरियाणा

सम्पादक :

आचार्य ब्र० नन्दकिशोर

अनीता आर्ष प्रकाशन

जगन्नाथ विहार, पानीपत (हरियाणा)

०१७४२-४०२९१

प्रकाशक :

लाला आदित्यप्रकाश आर्य
अनीता आर्ष प्रकाशन
जगन्नाथ विहार,
पानीपत (हरियाणा)
फोन : ०१७४२, ४०२९१

वितरक :

विजयकुमार गोविन्दराम हासानन्द

संस्करण : दूसरा २००१

मूल्य : ३०.००

मुद्रक :

राधा प्रेस
कैलाशनगर, दिल्ली-३१
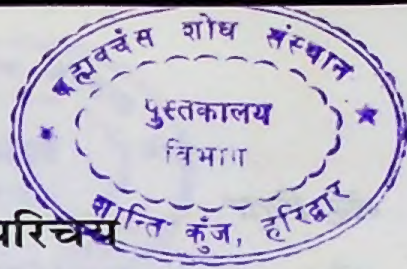
लेखक-परिचय

* अक्तूबर १९३९ में तंगौर ग्राम (कुरुक्षेत्र) में श्री प्रभुदयालजी के घर जन्म
* रसायन विज्ञान में एम.एस-सी. (ऑनर्ज), पी-एच.डी., चार्ल्स विश्वविद्यालय एवं हैरोवस्की (नोबेल पुरस्कार विजेता) इंस्टीच्यूट ऑफ़ पोलेरोग्राफी, प्राग, चैकोस्लोवाकिया तथा यू.एस.ए. में विशेष अध्ययन/अनुसंधान
* पंजाब विश्वविद्यालय चण्डीगढ़ में रसायन विज्ञान के प्रोफेसर, भूतपूर्व प्रोवाइस-चांसलर, कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय, कुरुक्षेत्र (१९८१-८४), यूनेस्को फैलो (१९७१-७२), फुल ब्राइट स्कालर (१९८९)
* विज्ञान एवं तकनीकी व इलेक्ट्रॉनिक्स राज्यमन्त्री हरियाणा सरकार (१९९१-९३); सदस्य : हरियाणा विधान सभा (१९९१-९६), पंजाब विश्वविद्यालय सीनेट (१९७२-९६) तथा सिण्डीकेट (१९७७-८०, ८५-९२); अध्यक्ष : पंजाब विश्वविद्यालय टीचर्स एसोसिएशन (१९७४-७६), पंजाब-चण्डीगढ़ विश्वविद्यालय एवं महाविद्यालय अध्यापक संगठनों की तालमेल समिति (१९७५-७६), हरियाणा हरीजन सेवक संघ (१९८३-८४) तथा हरियाणा इन्दिरा कांग्रेस तिवाड़ी (१९९५)
* चार पुस्तकें तथा लगभग ८० मौलिक वैज्ञानिक शोध पत्र प्रकाशित
* चैकोस्लोवाकिया (१९७१-७२, ९०), आस्ट्रिया (१९७१), हंगरी (१९७१), जर्मनी (१९७२, ९०), फ्रांस, स्विट्ज़रलैंड, बैल्जियम, नीदरलैंड, रौमानिया तथा युगोस्लाविया (१९७२), इंग्लैंड (१९७२, ८९), कनाडा (१९८९) अमेरिका (१९८९) आदि में अध्ययनार्थ/अनुसंधानार्थ प्रवास/भ्रमण
* अध्यापक, राजनीतिज्ञ, समाजसेवी, वक्ता, लेखक, सामाजिक मुद्दों के साथ गहरा जुड़ाव
* स्थायी निवास : १६३४-३५, सैक्टर १३, अर्बन एस्टेट, कुरुक्षेत्र (हरियाणा)

मेरे पिता

और उनका बड़ा भाई शहर आए हैं

दो भाई शहर आए हैं

अपने कपड़ों से पहचाने जाते हैं

कि वे अलग हैं

अपनी चाल से

बोली के भार से पहचाने जाते हैं कि वे अलग हैं

अपने चेहरे के रंग से—कि वे अलग हैं

जैसे वे हँसते हैं खुलकर, पहचाने जाते हैं

अपनी आवाज के भारी रेशे की मिठास से

पहचाने जाते हैं

उनकी चाल में है भारीपन, वे साथ लाए हैं

उनकी हँसी में हैं, बातें, वे साथ लाए हैं

वे साथ लाए हैं याद अपने पिता की

जिसके माथे पर

पगड़ी थी। माथे पर धूप, हाथ में हुनर

जितेन्द्र रामप्रकाश
की कविता
'दो भाई' से
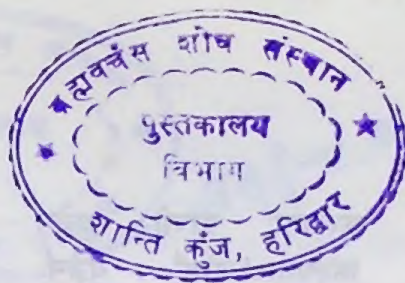
प्रेरणा स्रोत

भाई बीरुरामजी आर्य

प्रिय भाई श्री बीरुरामजी आर्य को
जिनकी सुखद छाया हमसे छिन गई है।

आयुर्यज्ञेन कल्पतां प्राणो यज्ञेन कल्पतां
चक्षुर्यज्ञेन कल्पताꣳश्रोत्रं यज्ञेन कल्पतां
पृष्ठं यज्ञेन कल्पतां यज्ञो यज्ञेन कल्पताम्।
प्रजापतेः प्रजाऽअभूम स्वर्देवाऽअगन्मामृताऽअभूम॥

–यजुः० ९ । २१

—:o:—

"होम करने से पवन और वर्षा-जल की शुद्धि से पृथिवी के सब पदार्थ की जो अत्यन्त उत्तमता होती है, उसी से सब जीवों को परमसुख होता है। इस कारण अग्निहोत्र करनेवाले मनुष्यों को उस उपकार से अत्यन्त सुख का लाभ होता है, और ईश्वर उनपर अनुग्रह करता है।"

—महर्षि दयानन्द सरस्वती

—ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका, पञ्चमहायज्ञविषयः

Do not reject what you do not understand;
for with understanding there may be acceptance.

—W. Rinder

—:o:—

A man would do nothing, if he waited until he could do it so well that none would find fault with what he has done.

—Cardinal Newman

अनुक्रम

प्रस्तावना

यज्ञ शब्द अति व्यापक है पर यह अग्निहोत्र अथवा हवन (होम) के लिए रुढ़ हो गया है। जहाँ श्रद्धालु यज्ञ को मोक्ष की सीढ़ी मानते हैं, वहाँ अनास्थावादी इसे अर्थहीन अवैज्ञानिक कर्मकाण्डी क्रिया समझते हैं। यज्ञ का सही भाव न समझने से ही चारवाक मत पनपा जिसकी प्रतिक्रिया जैन एवं बुद्धमत के रूप में हुई। तब स्वामी शंकराचार्य ने कोरे कर्मकाण्ड के विरुद्ध आवाज़ उठाई। यद्यपि विभिन्न मतावलम्बियों ने यज्ञ पर कई पहलुओं से चिन्तन, मनन, अध्ययन किया है, परन्तु इसके वैज्ञानिक विश्लेषण का लगभग अभाव है। प्रोफेसर सत्यप्रकाश ने इस विषय पर अपना चिन्तन अंग्रेजी में प्रकाशित किया था पर हिन्दी में तो उतना भी किया नज़र नहीं आता।

इस अभाव की पूर्ति के लिए मैंने एम.एस-सी. (आनर्ज) करते ही अपने पूज्य भाई श्री बीरुरामजी आर्य के दिशा निर्देश पर जो कुछ लिखा वह हवन-यज्ञ और विज्ञान शीर्षक से पुस्तिका के रूप में जून १९६३ ई. में प्रकाशित किया गया। तब भले ही उत्साह तो बहुत था पर शोध प्रविधि का न विशेष ज्ञान था, न अनुभव। रासायनिक पदार्थों के लिए प्रयुक्त हिन्दी शब्दावली भी मानक नहीं थी। मुद्रण की अशुद्धियाँ तो अनेक थीं, फिर भी पाठकों द्वारा इस प्रयास का स्वागत किया गया। मेरे भाईजी की सतत प्रेरणा बनी रही कि मैं चिन्तन को परिमार्जित करूँ और पुस्तक को संशोधित। मैं धीरे-धीरे इस दिशा में गतिशील रहा, पर बहुमुखी व्यस्तताओं, समयाभाव, लिखने के प्रति सुस्ती, प्रकाशित कराने की दुनियावी कला में अरुचि आदि मेरी कमियों ने तीस साल लगा दिये। समय के साथ इन मेरी कमियों पर भाईजी की इच्छा ही भारी रही। परिणाम—जो बन पड़ा वह आपके समक्ष है।

पुस्तक पढ़ने पर आपको सम्भवत: लगेगा कि विषय को एक अलग ढंग से समझने का प्रयास किया गया है। जैसे—यज्ञप्रेमी

प्राय: ऐसा मानते हैं कि यज्ञ सर्वदा सर्वत्र प्रचलित रहा है पर इसकी पुष्टि में प्रमाण देने की आवश्यकता कभी किसी ने नहीं समझी। इतिहास एवं परम्परा अध्याय में इस दिशा में एक सामान्य-सी पहल की गई है। यह अपने आपमें अनुसन्धान का एक स्वतन्त्र रोचक विषय है। पहल इस विश्वास के साथ की है कि न जाने कौन चिंगारी किस दिन धधक उठे।

यज्ञ को एक रासायनिक क्रिया के अतिरिक्त जिस सामाजिक एवं आर्थिक विधान के रूप में मैं समझ पाया हूँ, दूसरे अध्याय में उसकी चर्चा है। आशा है आपको यह रोचक लगेगा। आध्यात्म में मेरे-जैसे सामान्य व्यक्ति की न कोई गति है, न अनुभूति, अत: कोरे स्वाध्याय के आधार पर उधर दखल देने की अनाधिकार चेष्टा करने का साहस मैंने नहीं जुटाया।

तीसरे अध्याय में यज्ञशाला, यज्ञकुण्ड, यज्ञपात्र एवं सामान्य विधि पर ऋषि दयानन्द सरस्वती के विचारों तक सीमित रहा हूँ। विस्तार में इसलिए नहीं गया कि मेरा उद्देश्य अग्निहोत्र में होनेवाले सम्भावित रासायनिक परिवर्तनों को समझना था।

समिधाओं एवं हव्य सामग्री के औषध सम्बन्धी गुण, दोष तथा उनकी रासायनिक बनावट (अध्याय ४ व ५) इन पदार्थों के दहन पर उत्पन्न होनेवाली गैसों की जानकारी दे सकती हैं, अत: वैदिक विचारधारा एवं विज्ञान के आधार पर जो समझ पाया हूँ वह अध्याय ६ में लिखा है। विषय कठिन एवं अछूता है, अत: भूलों के लिए अग्रिम क्षमायाचक हूँ।

यज्ञ को पर्यावरण की शुद्धि का हेतु तो सभी मानते हैं (अध्याय ७) पर यज्ञ द्वारा वर्षा हो सकती है या नहीं—इसपर विपरीत धारणाएँ हैं। वर्षा की सम्भावना को नकारना न तो वैज्ञानिक है, न तर्कसंगत। हाँ, यह विषय अभी और खोज माँगता है।

विज्ञान के विद्यार्थियों की सुविधा के लिए पुस्तक में प्रयुक्त विशेष वैज्ञानिक शब्दों का अंग्रेजी रूपान्तर परिशिष्ट २ में दिया है। विज्ञान न जाननेवाले पाठकों को अध्याय ६ तथा ७ पढ़ने में कठिनाई न हो, अत: रासायनिक समीकरण साथ-साथ न देकर अलग से परिशिष्ट ४ में दी हैं। पुस्तक में यथासम्भव हिन्दी मानक

शब्दावली प्रयोग की गई है। जहाँ कहीं वेदमन्त्र के अर्थ करनेवाले मनीषि का नाम नहीं दिया, वे अर्थ ऋषि दयानन्द सरस्वती के भाष्यों से लिए गए हैं।

पाण्डुलिपि में शास्त्रों से दिये गये प्रमाणों को मूल ग्रन्थों से मिलाने आदि का कार्य आचार्य सोम वेदालंकार व प्रिय राजेन्द्र विद्यालंकार ने बड़ी सावधानी से किया है—मैं इनकी गहन रुचि के लिए आभारी हूँ। महात्मा सत्यदेव आर्य वानप्रस्थी वेदभवन कुरुक्षेत्र का आशीर्वाद मेरे साथ रहा, पर यदि ब्रह्मचारी नन्दकिशोरजी इस पुस्तक के प्रकाशन की व्यवस्था न करते तो कदाचित् यह आपके हाथों में न होती। समय के साथ एकत्रित सामग्री भी नष्ट हो जाती। उनके सहयोग की सराहना कैसे करूँ? पुस्तक के सुन्दर मुंद्रण का पूर्ण श्रेय स्वामी श्री जगदीश्वरानन्दजी महाराज को है।

साथ ही एक पीड़ा भी लगातार परेशान कर रही है। मैं जीवन में जिस रूप में हूँ उस सबमें मेरे स्वर्गीय पिता श्री प्रभुदयालजी व पिता तुल्य सहोदर भाई श्री बीरुरामजी आर्य का सर्वाधिक योगदान है। मेरा भाई और मैं एक आत्मा के दो शरीर थे। चोट मुझे लगती थी, दर्द उन्हें होता था। क्रूर मौत ने ९ दिसम्बर १९९५ को उस पवित्रात्मा को हमसे छीन लिया। उनके बिना सब सूना है। जिस पुस्तक के प्रकाशन में उन्हें गहन रुचि थी, उसे प्रकाशित भी न देख पाये। उनके आशीर्वाद का फल उन्हीं की पुण्य स्मृति में समर्पित है।

इस पुस्तक के संशोधन में आपके सुझावों का स्वागत है।

ऋषिनिर्वाणोत्सव — **—रामप्रकाश**

१० नवम्बर, १९९७
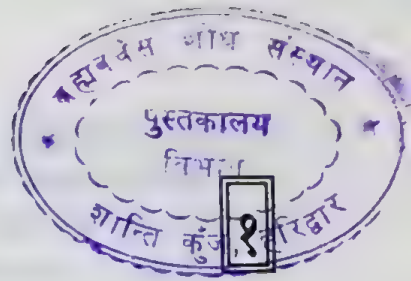
इतिहास एवं परम्परा

आदिकाल से मानव आनन्द-प्राप्ति एवं आत्मोन्नति के लिए प्रयत्नशील है । योगी, दार्शनिक, वैज्ञानिक सभी इसी लक्ष्य-सिद्धि के लिए साधना करते रहे हैं । यज्ञ इस साधना का निखरा हुआ स्वरूप है । मनुष्य ने यज्ञ को किसी-न-किसी रूप में सदा ही स्वीकार किया है । इस वास्तविकता की सम्पुष्टि शास्त्रीय और ऐतिहासिक—दोनों ही साक्ष्यों से होती है । अग्निहोत्र एवं यज्ञमयी भावना की सर्वप्रथम प्रेरणा मानव को स्वयं परमपिता परमात्मा से मिली—"हे ब्रह्मणस्पते! उठ खड़ा हो; यज्ञ कर; अन्य उत्तम पुरुषों को यज्ञीय भावना से अवगत करा तथा इस मार्ग का अवलम्बन करते हुए आयु, प्राण, प्रजा, पशु तथा यजमान की कीर्ति को बढ़ा ।"

—अथर्व० ६।६३।१

सृष्टिकर्त्ता ने स्वयं एक शाश्वत यज्ञ का दिव्य आयोजन कर रखा है। वह प्रभु यज्ञ (यजुः० ३१।७) भी है और होता (ऋक्० १।१।१ एवं १०।८१।१) भी । इसीलिए शतपथब्राह्मण (१।१।८।८) ने **यज्ञो वै विष्णुः** कहा है । शतपथ (१।७।१।५) ने यज्ञ को सर्वश्रेष्ठ कर्म घोषित किया है—**यज्ञो वै श्रेष्ठतमं कर्म** । छान्दोग्योपनिषद् (२।२३।१) ने यज्ञ, अध्ययन और दान को धर्म का प्रथम स्कन्ध माना है—

त्रयो धर्मस्कन्धाः यज्ञाध्ययनदानमिति प्रथमः ।

कालक्रम की दृष्टि से वैदिक काल का उत्तरार्द्ध व ब्राह्मणकाल बृहद् यज्ञों के लिए प्रसिद्ध हैं । इसीलिए कुछ विद्वान् इसे यज्ञकाल भी कहते हैं । ब्राह्मणग्रन्थों का तो मुख्य विषय ही यज्ञीय प्रक्रियाओं (समाविष्ट तथ्यों) की वैज्ञानिक व्याख्या करना है । यज्ञीय शब्दकोश के अनेक नूतन तथा रोचक व्याख्यान हमें इन ग्रन्थों में मिलते हैं । इन ग्रन्थों के सामाजिक अनुशासन को दृष्टि में रखकर किए गए अध्ययन से ये निष्कर्ष प्राप्त होते हैं कि उस समय प्रत्येक मास की अमावास्या तथा पूर्णिमा को बड़े यज्ञ होते थे । अमावास्या के यज्ञ का पारिभाषिक अभिधान दर्शेष्टि एवं पूर्णिमा

के यज्ञ का पौर्णमासेष्टि था। श्रावणी और आषाढ़ी के अवसरों पर नए अन्नों द्वारा यज्ञ होता था। पाक्षिक, मासिक, चातुर्मासिक एवं षण्मासिक आदि बड़े-बड़े यज्ञ किए जाते थे। उपनिषद् ग्रन्थों में भी हमें एतादृश प्रसङ्ग मिलते हैं। कठोपनिषद् का वाजश्रवा द्वारा सर्वमेध-(सर्वहुत)-यज्ञ विवरण (१।१।१) एवं इसी उपनिषद् में यमाचार्य द्वारा नचिकेता को दिया गया स्वर्ग्याग्नि (यज्ञाग्नि) विषयक उपदेश (१।१।१५) विशेषतः अवलोकनीय है।

मनुस्मृति (४।२१) में पञ्च महायज्ञों के अनुष्ठान का विधान है—

ऋषियज्ञं देवयज्ञं भूतयज्ञं च सर्वदा।
नृयज्ञं पितृयज्ञञ्च यथाशक्ति न हापयेत्॥

मनु महाराज ने प्रातः और सायं सन्ध्या एवं यज्ञ न करनेवालों को सभी द्विज-कर्मों से निकाल देने का आदेश किया है—

न तिष्ठति तु यः पूर्वां नोपास्ते यस्तु पश्चिमाम्।
स शूद्रवद् बहिष्कार्यः सर्वस्माद् द्विजकर्मणः॥

मनु० २।१०३

रामायणकाल में महाराज दशरथ का महर्षि शृंग के पौरोहित्य में पुत्रेष्टि यज्ञ कराने (बालकाण्ड १५।२) तथा विश्वामित्र के यज्ञ की रक्षा के लिए राम और लक्ष्मण को भेजने (बालकाण्ड १६।१७) की कथा सर्वविदित है। रामायणकाल से पूर्व भी महाराजा दशरथ के पूर्वजों—महाराजा दिलीप एवं महाराजा अज के द्वारा विजित सम्पूर्ण सामग्री से यज्ञ करने का वर्णन कविवर भास ने प्रतिमानाटकम् में किया है। ऋषि-मुनियों के आश्रमों में अनिवार्यतः यज्ञशालाएँ होती थीं। वाल्मीकि रामायण के अरण्यकाण्ड में अगस्त्यमुनि की अग्निशाला (यज्ञशाला) की चर्चा है।

महाभारतकाल में भी यज्ञों का प्रचलन था। पाण्डवों ने खाण्डव वन जलाकर इन्द्रप्रस्थ की स्थापना की और तब श्रीकृष्ण की प्रेरणा से राजसूययज्ञ किया। दुर्योधन ने सभी राजाओं को जीतने पर कर्ण की प्रेरणा से वैष्णव याग किया (महाभारत, वनपर्व २५५।१६-२१)। महाभारत के युद्ध की समाप्ति पर महाराज युधिष्ठिर ने अश्वमेध यज्ञ रचाया। भारतीय राजपरम्परा के अनुसार राजा-महाराजा अपने उत्तराधिकारी के राजतिलक के अवसर पर अनेक बृहद् यज्ञों का आयोजन करते थे।

विदेशों में भी यज्ञ का प्रचलन रहा है। हनुमान्‌जी जब सीता की

खोज में लङ्का गए तो उन्होंने वहाँ के निवासियों को यज्ञ करते हुए देखा। सुदूर पूर्व में यज्ञों का प्रचलन निकट भूत में भी था। बोर्निया के कूटेई प्रान्त से १८७६ ई० में प्राप्त शिलालेख बताते हैं कि वहाँ के सम्राट् मूलवर्मन (४०० ई०) ने बहुसुवर्णक यज्ञ किए थे—

श्रीमूलवर्म्माराजेन्द्रो यष्ट्वा बहुस्वर्णकम् ।
तस्य यज्ञस्य यूपोऽयं द्विजेन्द्रैः सम्प्रकल्पितः ॥

कम्बुज देश (कम्बोडिया) में वैदिक यज्ञ किए जाते थे। शिवाचार्य सम्राट् ईशानवर्मन् द्वितीय (६२५-६२८ ई०); जयवर्मन् (६२६-६४१ ई०) तथा राजेन्द्र वर्मन् (६४४-६६६ ई०) के यज्ञ के होता थे। सम्राट् उदयादित्य वर्मदेव (१००१ ई०) के समय में जयेन्द्र वर्मन् राजगुरु थे और उसने ब्रह्मयज्ञ किए। याज्ञिक को यजमान की ओर से दक्षिणा मिलती थी। सम्राट् सूर्यवर्मन् द्वितीय (१११२-१११३ ई०) के नोम संडक लेखानुसार उसने कोटिहोम, लक्षहोम, महाहोम तथा पितरों के लिए यज्ञ किए।[१] सम्राट् ने लक्षहोम तथा कोटिहोम के पश्चात् दिवाकर पण्डित को बहुत दक्षिणा दी। यज्ञ केवल राजवंश तक ही सीमित न थे अपितु जनसाधारण में भी लोकप्रिय थे। मध्यदेश की मालिनी नाम की स्त्री द्वारा ब्रह्मयज्ञ करने का उल्लेख भी मिलता है।[२]

चम्पादेश (अनाम) के लेखों से ज्ञात होता है कि वहाँ का राजा यज्ञ करता था और उसे ब्राह्मण तथा राजपुरोहित यज्ञों एवं संस्कारों के विषय में परामर्श देते थे। ईसा की प्रारम्भिक शताब्दियों में जावा, सुमात्रा, बाली तथा मलाया प्रायद्वीपों में हिन्दुत्व ने अपना स्थान बना लिया था और वहाँ यज्ञ होते थे।[२]

चीन में राजा फूसी ने यज्ञों का आयोजन किया था। चीन के यज्ञों के सम्बन्ध में डॉक्टर लैग लिखते हैं, "यज्ञों से पूर्व व्रत और अनेक प्रकार की शुद्धियों का करना राजा और उसके पुरोहितों के लिए आवश्यक होता था। सुगन्धित रसों की आहुति दी जाती थी; ताकि देवता बुलाए जा सकें और उनका आह्वान करने का काम एक कार्यकर्त्ता करता था; जो मुख्य द्वार के अन्दर की ओर खड़ा होता था।"[३]

चीन और जापान में यज्ञ को घोम कहते हैं। नादविश्लेषण द्वारा घोम होम का ही अशुद्ध रूप प्रतीत होता है। वहाँ मन्दिरों में आज भी धूप जलाने की प्रथा है। जापान के यज्ञों के बारे में वर्णन मिलता है

कि 'एक और संस्कार सुगन्धित धूप जलाने का, जोकि हेयन-काल में पहले ही प्रचलित रह चुका है, अब भी लोकप्रिय था। शुको तथा उसका शिष्य शिनोदोकन इसके सर्वाधिक प्रसिद्ध शिक्षक थे । दोकन के शिष्य शिनोशेशिन ने धूप जलाने की विधि एवं संस्कार को उन्नत करके इसे एक स्वतन्त्र कला बना दिया ।''[४]

ईरान के यहूदियों में यज्ञों का बहुत प्रचलन था । वे यज्ञकुण्ड को कैर कहते हैं । ज़िन्दावस्ता में होता को जोता कहा गया है । यहूदी अब भी घर में पवित्र अग्नि (आतिशे बहराम) प्रज्वलित रखते हैं । इस अग्नि का बुझ जाना किसी भावी दु:ख एवं सङ्कट का पूर्व सङ्केत समझा जाता है । जिन पुरोहितों ने अपनी आत्मा तथा शरीर की शुद्धि कर ली हो, वे इस अग्नि का पूरा ध्यान रखते हैं । इसे पत्थर की वेदी पर चाँदी या कांसे के पात्र में पवित्र काष्ठ तथा सुगन्धियुक्त पदार्थों की हवि के द्वारा प्रज्वलित रखा जाता है । ज़िन्दावस्ता में यज्ञवेदी के निर्माण का कोई विशेष स्पष्ट सङ्केत नहीं मिलता, परन्तु गृहाग्नि को खुश्क ईंधन तथा सुगन्धित पदार्थों के द्वारा प्रज्वलित रखा जाता था । कालान्तर में यज्ञवेदियों का निर्माण भी आरम्भ हो गया । प्राचीन ईरानी अग्निपूजक नहीं थे, अपितु यज्ञ के द्वारा प्रभु की आराधना किया करते थे । कुछ संस्कार ऐसे हैं जिनका पूर्ण सञ्चालन केवल पुरोहित ही करता है; कुछ ऐसे हैं जिनमें उपकरणों को सामान्य व्यक्ति भी छू सकता है; और ऐसे छोटे-छोटे संस्कार कम ही हैं, जिन्हें पुरोहित तथा जनसाधारण मिलकर करते हैं । सुगन्धियुक्त लकड़ी (प्राय: चन्दन) के द्वारा अग्नि प्रज्वलित की जाती है । फिर उसमें घी, दूध, सोम बूटी का रस, पवित्र रोटी एवं पवित्र जल, फूल तथा अन्य सुगन्धित धूप की आहुतियाँ दी जाती हैं । प्राचीन ईरानियों की यह प्रथा अब तक पारसियों में प्रचलित है ।[५] भारत तथा ईरान में यज्ञ सुसंगठित प्रक्रियाओं का केन्द्र था और पुरोहितवर्ग द्वारा सम्पादित होता था । सोम बूटी की, कूट-छान और दूध में मिलाकर, आहुति दी जाती थी । अग्नि में हवि प्रदान करना भारतीयों एवं ईरानियों की प्रथा है जोकि ग्रीस तथा रोम में भी पाई जाती है । विवाह-संस्कार में नवदम्पती वैवाहिक अग्नि की परिक्रमा करते हैं; वर अग्नि में हवन करता है तथा वधू के द्वारा लाजा-होम होता है । यह सब भारतीय-ईरानी प्रथा है । रोम देश में भी नवविवाहित वाम दिशा से दक्षिण की ओर वेदी की परिक्रमा करते हैं और अग्नि में रोटी की आहुति देते हैं ।[६] रोम में बेसटा

देवी के मन्दिर में कुण्ड में अग्नि जलती रहती है तथा उस अग्नि में सुगन्धित पदार्थ डाले जाते हैं।

बौद्धभिक्षु चमनलाल ने अमरीका के विषय में महत्त्वपूर्ण खोज की है। उन्होंने लिखा है कि प्राचीन समय में वहाँ के विद्यार्थियों का कर्त्तव्य होता था कि वे मन्दिर में झाड़ू लगाएँ तथा पवित्राग्नि की देखभाल करें। बच्चे के जन्म के अवसर पर चार दिन तक यज्ञ होता था। किसी अवस्था में भी चार दिन तक इस अग्नि को बुझने नहीं दिया जाता था। मन्दिरों में देवदासियों का एक मुख्य कर्त्तव्य पवित्र अग्नि की रक्षा करना, उसे बुझने से बचाना तथा उसमें देवताओं के लिए प्रतिदिन भोजन की आहुति देना था। भारतीयों की भाँति कृषि के देवता की आराधना के लिए प्रत्येक व्यक्ति (हाल के बीच में रक्खे पात्र में जलती) अग्नि में भोजन की थोड़ी-सी आहुति देता था। युद्ध से पूर्व भी पुरोहित यज्ञ करते थे।[७]

रेड इण्डियनों तथा मिश्र में भी यज्ञ का प्रचार था। आयरलैण्ड तथा दक्षिणी अमरीका में महामारी की रोकथाम के लिए अग्नि जलाई जाती थी। आग जलाने की प्रथा गत शताब्दी तक स्काटलैण्ड में भी थी।

ईसाई तथा मुसलमान भी लोबान और ऊदबत्ती (अरबी भाषा में अगर को ऊद कहते हैं। अगर यज्ञ-सामग्री में प्रयोग किया जाता है) जलाते हैं। सिख और जैनी भी धूप जलाकर वायु की शुद्धि करतेहैं। सिख मत एवं इतिहास के अधिकारी विद्वान् स्वामी स्वतन्त्रानन्द[८] तथा स्वामी अमृतानन्द[९] ने अपनी पुस्तकों में सिख मत तथा गुरुओं की यज्ञ के प्रति श्रद्धा की चर्चा निम्नलिखित प्रमाणों के साथ की है—

तित घीये होम जग सद पूजा, पइयै कारज सोहै।

—वार माझ महला १।२६

अर्थात् इस घी से हवन यज्ञ और पवित्र पूजा के कार्य शोभा पाते हैं।

होम जग उरध तप पूजा। कोटि तीर्थ इसनान करीजा।
चरण कमल निमख रिदै धारे ।
गोबिन्द जपत सभि कारज सारे।

—राग प्रभाती महला ५, अष्टपदियाँ ३

अर्थात् ऊँचे और पवित्र हवन-यज्ञ, तप, पूजा, करोड़ों तीर्थ-स्नान आदि शुभ कर्म करे, परन्तु हृदय में सदा प्रभु-प्रेम धारण करे। प्रभु-स्मरण

करता हुआ ही सारे पवित्र कर्मों को पूर्ण करे ।

भाई गुरदास अपनी इकतालीसवीं वार में लिखते हैं—

निज फते बुलाई सति गुरु, कीनो उज्यारा ।
झूठ कपट सभ छुप गये, सब सच वरतारा ।
फिर जग होम ठहराये कर निज धर्म संवारा ।
तुर्क दुन्द सब उठ गयो, रचियो जैकारा ॥१८॥

अर्थात् दशम गुरुजी ने अपनी विजय की घोषणा की, अन्धेरगर्दी को मिटाकर न्याय का उजाला किया, झूठ और कपट छुप गया, सत्य का बोलबाला हो गया, हवन-यज्ञ का फिर प्रचार हुआ जिससे जनता ने अपने धर्म को संवार लिया, मुसलमानों का अत्याचार बन्द हो गया, धर्म जैकारा गूँज उठा ।

इसी प्रकार भाई गुरदासजी ने चौथी वार में लिखा—

घी ते होवन होम जग, ढंग सुआरथ चज अचारा ॥

—वार ४, श्लोक पद ८

अर्थात् घी से हवन-यज्ञ, पर्व, शुभकार्य और सदाचार सम्बन्धी पवित्र कर्म होते हैं ।

चीफ खालसा दीवान के प्रसिद्ध उपदेशक भाई हरनामसिंह "सच्ची मुहबत" नामी पुस्तक में लिखते हैं—

यज्ञ होम होवना न हिन्द में कोई मूल पाता,
झूलते निशान नहीं आज हिन्दुवान के,
कहत हरनाम सिंह इसमें न झूठ जानो,
तीर जो न छूटते गोबिन्द सिंह जुबान के ।

अर्थात् इसमें कुछ भी शक नहीं कि यदि गुरु गोबिन्दसिंहजी जैसे वीर योद्धा के तीरों की वर्षा न होती तो भारतदेश में हवन-यज्ञ न हो पाते और हिन्दुधर्म के झण्डे न झूलते ।

इसी प्रकार नामधारी सिखों के 'नित्य-नियम' गुटके में लिखा है—"साहिब गुरु गोबिन्दसिंहजी की हवन-यज्ञ के साथ ऐसी प्रीति थी कि आपजी ने सवा लाख दमड़े की सामग्री एकत्र करके नैना देवी के मन्दिर में हवन किया था ।"

गुरु गोबिन्दसिंह ने जो हवन किया था, उसके विषय में ज्ञानी ज्ञानसिंह ने लिखा है कि गुरु महाराज ने अपनी सम्मति पण्डित केशवदास को

इस प्रकार दी थी—
जग-होम बेशक करावें ।
इह तो धरम हमारा सार । करत रहे नृप मुनि-अवतार ॥
सो तो हम भी करना चैहैं । जिसते सभ सृष्टि सुख पैहैं ॥
इक तो अब दुरभिख अति भारी । है पड रहिओ न बरसत वारी।
दूसर भारतवर्ष मझारे । महामरी पड़ रही अपारे ॥
त्रितीए जो नर नारी आर्य । होइ रहे निज धरमों खारज ॥
पाप कुकरमन में सभ लागे । इसी हेत बन रहे अभागे ॥
जग्य हवन लों सुकृत जे हैं, हाकम तुरक करन ना दैहैं ॥
हम जब हवन जग्य करवै हैं । खुश होइ घन जल बहु बरसै हैं ॥
दुरभिख नासे अन्न बहु पै हैं । धरनी रस सभ विधि प्रगटै है ॥
पवन हवन ते शुद्ध भवै हैं । रोग सोग सब दूर नसै हैं ॥
बुद्धि शुद्ध नर नारिन लैहैं । सुकृत सब करने लग जैहैं ॥
नसे अविद्या विद्या ऐ हैं । सूरवीरता दृढ़ प्रगटै हैं ॥
वर्णाश्रमी जन हैं जेते । काइरता कर पूरन तेते ॥
भेड़ बकरिआँ सम होइ रहे । वाञ्छित काम तुरक सबल है ॥
इने हवन की पवन लगे जब । शेर बघिआइन से ह्वै हैं तब ॥
सूरवीरता उर में जग है । धरम पुरातन करने लग है ॥
प्रभता देह अरोग कराती । विजय गिआन संतत सुख दाती ॥
निरभयता जस, गुण देवी सब । होहि प्रापत गुर घर में तब ॥
बालक भाग्यवान प्रगटै हैं । रोग सीतला आदि नसै हैं ॥
कामादिक सब असुरी संपति । जग्य होम को पिखके कंपत ॥
उत्तम गुण सत आदिक जै हैं । बाबन कहे वेद रिग में हैं ॥
सो अवश्य जग में वरते हैं । जग्य हवन विधिवत जब ह्वै हैं ॥

—पन्थप्रकाश, निवास २५, पृष्ठ २०२

अर्थात् हे पण्डितजी ! हवन-यज्ञ तो हमारे धर्म का सार है, इसे तो राजे-महाराजे ऋषि-मुनि और अवतार करते चले आये हैं, इसलिए हम भी इसे करना चाहते हैं, जिससे सारे संसार को सुख हो, एक तो भारी अकाल पड़ रहा है, वर्षा हुई नहीं, दूसरे देश में रोग फैल रहा है, तीसरा जो स्त्री-पुरुष आर्यधर्म से विमुख हो रहे हैं, अर्थात् पाप कर्म में लग रहे

और अभागे बन रहे हैं। मुसलमान हाकम यज्ञादि शुभ कर्मों को करने भी नहीं देते।

हम जब हवन-यज्ञ करेंगे तो फल यह होगा कि बादल प्रसन्न होकर जल बरसावेंगे, अकाल नहीं रहेगा, अन्न अधिक उत्पन्न होगा, जनता शुभ कर्म करने लगेगी, अविद्या का नाश और विद्या की वृद्धि होगी, शूरवीरता आएगी, वर्ण-आश्रमी जो कायर बन रहे हैं उन्हें जब हवन की वायु लगेगी, तो शेरों की तरह शक्तिशाली होंगे, उनके हृदय में शूरवीरता उत्पन्न होगी, तब प्राचीन धर्म को करने लगेंगे, इनमें प्रभुता, आरोग्यता, क्रान्ति, विजय का ज्ञान और उत्तम सन्तान उत्पन्न होगी। निर्भयता, यश और सब दैवी गुण गुरु घर में आ जाएँगे। भाग्यवान् बालक जन्म लेंगे, शीतलादि रोग नष्ट होंगे, काम-क्रोधादि आसुरी भाव हवन-यज्ञ को देख काँपने लगेंगे, सत्य धर्म आदि बावन प्रकार के गुण जो ऋग्वेद में लिखे हैं वे अवश्य ही जगत् में आएँगे, जबकि हम विधिवत् हवन-यज्ञ करेंगे।

यह हवन-यज्ञ कई मास तक होता रहा, पण्डित केशोदास इसके ब्रह्मा थे और कई ब्राह्मण यज्ञ में सहायक थे। गुरुजी यज्ञमान (होता) थे। जब यज्ञ पूर्ण हुआ तो जनता में बड़ा उत्साह था और इस यज्ञ का उत्तम फल निकला। तब पण्डित केशोदास ने कहा—

आप हवन के नफे जो गाये। होई अवश्यमेव सब भाये॥
पर उपकार जगत पर भारी। होइ आपका जग सुखकारी॥

—पन्थप्रकाश, विवास २५, पृष्ठ २०२

ज्ञानी ज्ञानसिंह लिखते हैं कि सतलुज नदी के तट पर गुरु के बाग में एक सुन्दर जगह देखकर यह ऐतिहासिक यज्ञ होने लगा। चैत्र मास सं० १७५४ के नवरात्रों में शुभ लगन में आरम्भ किया गया। भारी सामग्री के साथ घी की धार परनाले की भाँति हवन कुण्ड में पड़ती थी, चार मास तक हवन होता रहा तब बड़ी वर्षा हुई।

आनन्दपुर तट सतलुजे गुर के बाग मझार।
हवन होन लागिओ तहाँ, पिख स्थान उदार॥
सत्रां सै चुरंजा चेत नवरात्रा के मांही।
लगन महूरत सोध भले सब हवन अरंभयो वांही॥
केशव हवन करावन बैठे गुरु आहुति देते।
वरनी करनी और विप्रन ठानी सांती हेते॥

सामग्री युत परनारे सम धारा घृत पवे है ।
चार मास तहि हवन भयो जब वर्षा लगी अते है ॥
फिर नैना देवी टिले पर असथल पेख सुहावन ।
जाइ हवन करने गुर लागे दिजवर बैठ करावन ॥

—पन्थप्रकाश, निवास २६, पृष्ठ २०४

पूर्णाहुति

तब गुर सरव सामग्री हवनकुण्ड कें मांही ।
एकहि वेर जब पावसी चानण भए महाहि ॥

—पन्थप्रकाश, पृष्ठ २०५

लोकचर्चा हुई

अब तुरकन के जुलम ते छुट जै है हिन्दवान ।
मुसलिआं को गुरु मार है ठान घने घमसान ॥
या विधि कर सतगुरु निज कार्य ।
आनन्दपुर दिन आये आर्य ॥

—पन्थप्रकाश, पृष्ठ २०५

यज्ञ का फल, जो उस समय प्रगट हुआ

जा दिन ते जग्य होम करयो गुर, पूर रहयो जस भूर उदारे ।
घोर जिते जग्य होमन के फल, वेद भने वरते जग सारे ॥
वारस होन लगी मनवाञ्छित, रोंग विसूचिक लौं सब टारे ।
लोगन केर स्वभाव स्वते सिध, थे बदले सब काज विधारे ॥३॥
फैल रहे फल फूल युक्तेतरु, औ उगले धरनी रस सारे ।
तेज लगो तुरके घटनो, चमके हिन्दवाइन वांग सितारे ॥
भै मिटियो सतईतन को सभ, और उपद्रव ईस निवारे ।
देन लगी बहु दूध गऊ महि, होन लगे अन्न घास पारे ॥४॥
लोग सिआने कहें मिलयौं इह, होम सु जग्य गुरै बडिआई ।
भारत भूमि विखै अति आनन्द, होइ गयो संतजुग निआई ॥
मन्द स्वभाव कुकरम क्लेस, गये उठ यों रवि ते तम जाई ।
होत विचार घरो घर यों गुर कीरति फूली मनो फल वाई ॥५॥

—पन्थप्रकाश, निवास २६, पृष्ठ २०८-९

रोग कटावन होम महा सकती, विदतावन की सुनके ।
संगत देस विदेसन ते, बहु आने लगी गुर पै गुनके ।
इसमें धन भूर गुरे खरचिओ, इह सोच चढावहि दुगुनके ।

—पन्थप्रकाश, पृष्ठ २०८-६

इस लेख का भाव यही है कि गुरु गोबिन्द सिंहजी ने यज्ञ करना श्रेष्ठ पुरुषों का कर्त्तव्य बताया और उसके फल रोग-निवृत्ति, समय-समय पर वर्षा होना, दुर्भिक्ष का मिटना, जनता में सुख होना, लोगों में सद्भावना आदि आना माना। यज्ञ समाप्त हुआ, लोगों में नाना प्रकार के वाद चले, और देश में उस यज्ञ के अच्छे फल हुए। उससे गुरुजी की ख्याति भी बढ़ी। इस प्रकार इस लेख से सिद्ध है, गुरु गोबिन्दसिंहजी ने स्वयं हवन किया, वह हवन के प्रबल समर्थक थे।

इस समय भी सिखपन्थ में एक नामधारी नाम का दल है। उसके प्रवर्त्तक सतगुरु रामसिंहजी भैणी राइयां जिला लुधियानावाले हैं। उनमें अब भी हवन का प्रचार है।

उनके अनुयायी निधानसिंह आलिम लिखते हैं, "श्री सतगुरु रामसिंहजी ने अपने धरम-प्रचार दे प्रोग्राम विच यग्य होम नूं विशेषरूप विच प्रचारिआ है। हर दीवान दी समापति दे समे होम कीता ज़ांदा है। हवन दी मरयादा जो श्री सतगुरु रामसिंहजी ने उचारन कीती, इउं है। पहलां चौका देणा होम दी जगह, लकड़ी होम विच पलाश दी पौणी जां बेरी दी पौणी, फूँक नहीं मारनी होम दी अग नूं, पक्खे नाल झलणा पंजां आदमीयां ने होम विच पोथीआं तों वाणी पढ़नी, चौपाई, जपु, जापं, चण्डी दी वार, उग्र दन्ती, चण्डी चरित्र, अकाल उस्तुति। छवां आदमी आहुति पावे, सतवां नाल-नाल जल दा छिटा देवे थोड़ा-थोड़ा। वधेरे वा कवी हवन करनेवाले सत सिंघ इसनान करके सुध देही, सुध वसत्र पहनके तयार वर तयार हो जाण। हवनवाले थां नू लिपण-पोचणवाली मिटी विच गोहा नहीं, रलौणा, वेरी जां कपाह दीआं लकडआं निकीआं-निकीआं करके हवनकुण्ड विच जोड़ देणीआं ते विच इस साबत नलेर (नारियल) रखके वसंत्र जगाणी। उपरंत अरदास करके वाणीआं पढनीआं। वाणीआं दी समापती ते फेर अरदास करके जैकारा गजादेणा (घोस करना)।"[१०]

इसी प्रकार कुछ अन्य मतावलम्बी भी अग्निहोत्र करते हैं। बिश्नोई मत के विषय में हीरालाल महेश्वरी[११] लिखते हैं, "धर्मनियम क-६; निष्ठा और

प्रेमपूर्वक हवन करना; प्रतिदिन प्रातःकाल घी से हवन करना एक नित्यकर्म है, जो वैदिक परम्परा का पालन है। हवन करते समय एक विशेष लययुक्त उच्च स्वर में सबदवाणी का पाठ किया जाता है जिसकी परम्परा जम्भजी की विद्यमानता में ही आरम्भ हो गई थी।" नामधारियों की भाँति बिश्नोई भी यज्ञ करते समय वेदमन्त्रोच्चारण नहीं करते, अपितु अपने ग्रन्थों का पाठ करते हैं।

ग्रामीण अञ्चल में स्थापित देवालयों को ऋषिदयानन्द सरस्वती यज्ञ करने का स्थान मानते हैं। ऋषिवर[१२] लिखते हैं, "मूर्त्ति का स्थापन करने, पूजने के स्थान, जिनमें कि घण्टानाद, आर्त्ति आदि करते हैं, उनको देवालय कहते हो, तो ठीक नहीं------ इससे जिसमें होम किया जाता है, वही स्थान "देवालय" शब्दवाच्य हो सकता है, क्योंकि "देवपूजा" शब्द से होम का ग्रहण है।" गाँव के शिवालय यज्ञमण्डप ही समझे जाने चाहिएँ। आज तक भी यज्ञशालाओं की तरह इनमें आठ दरवाजे होते हैं; जिनमें सात तो प्रायः बन्द कर दिए जाते हैं, केवल एक दरवाजा ही आने-जाने के लिए खुला रखा जाता है। कालान्तर में इन मण्डपों में यज्ञकुण्ड के स्थान पर शिवलिङ्ग की स्थापना की गई प्रतीत होती है (अन्यथा मूर्त्तियाँ मन्दिर के बीच में नहीं अपितु दीवार के साथ लगी होती हैं), अतः भारत में तो गाँव-गाँव में यज्ञ का प्रचार रहा है।

द्रष्टव्य :

१. R.C. Majumdar; Kambujadesa, University of Madras, 1944

२. बैजनाथपुरी, सुदूर पूर्व में भारतीय संस्कृति और उसका इतिहास, हिन्दी समिति, सूचना विभाग, उत्तर प्रदेश, (१९६२)

३. Form Su King's translation

४. The Russo-Japanese War, Vol.-VI., p. 576

५. E.S. Dadabhai Bharucha : Zoroastrain Religion and Customs, Tarapore Vale Sons & Co. Bombay, 1928

६. A.A. McDonell : A History of Sanskrit-Literature, Munshi Ram Manohar Lal, New Delhi. (1970), P. 263

७ Chaman Lal : Hindu America, Paragon Book Gallery, New York (1966), pp. 65, 70, 72, 78

८. स्वामी स्वतन्त्रानन्द, आर्यसिद्धान्त तथा सिखगुरु, विद्या-प्रचारिणी समिति (ट्रस्ट) पेप्सू, पटियाला, संवत् २००६ वि०, पृष्ठ १३३-१३७

९. स्वामी अमृतानन्द सरस्वती, गुरुग्रन्थ का वैदिक पन्थ अर्थात् खालसा-ज्ञानप्रकाश, वैदिक साधनाश्रम, यमुनानगर, सन् १९९५, पृष्ठ ९९-१०४

१०. निधानसिंह आलम, हवनप्रकाश, पृष्ठ १६-१७

११. Hira Lal Maheshwari, Jambhoji, Sahitya Academy, New Delhi (1981), P. 57-58

१२. ऋषि दयानन्द सरस्वती, वेदविरुद्धमतखण्डनम्, दयानन्द-ग्रन्थमाला, प्रथम खण्ड, परोपकारिणी सभा अज़मेर, (१९८३)

भावना

महात्मा बुद्ध ने अपने अनुभव के आधार पर जो चिन्तन दिया, उसका भारतीय जनमानस पर गहरा प्रभाव पड़ा है। उनका यह विचार कि 'संसार दुःखों का घर है'—इतना प्रभाव डालता चला गया कि गुरु नानक देव ने फ़रमाया—"**नानक दुखिया सब संसार।**" किसी सामान्य व्यक्ति से गली-मोहल्ले में पूछिए—'क्या हाल है ? समय कैसा बीत रहा है ?' तो पुराने ढंग से सोचनेवाला व्यक्ति एक उत्तर देता था—'जो समय कट जाए, अच्छा है।' ऐसा लगता है जैसे व्यक्ति दुःखों से अत्याधिक घिरा हुआ है। ऋषिवर दयानन्द इस दर्शन से सहमत नहीं हैं। बौद्धमत की समीक्षा करते हुए ऋषिवर लिखते हैं, "जो सब संसार दुःखरूप होता तो किसी जीव की प्रवृत्ति न होनी चाहिए। संसार में जीवों की प्रवृत्ति प्रत्यक्ष दीखती है, इसलिए सब संसार दुःखरूप नहीं हो सकता, किन्तु इसमें सुख-दुःख दोनों हैं।"[१] यदि व्यक्ति इस सुख और दुःख के सन्तुलन को सुख की ओर ले-जाना चाहता है और अपने जीवन में दुःखों को दूर करना चाहता है तो उसे प्रत्येक कर्म को यज्ञमयी भावना के साथ करना चाहिए। शास्त्रकार कहते हैं कि यज्ञ श्रेष्ठतम कर्म है। इसलिए मैं जो भी काम करूँ उसे यज्ञमयी भावना के साथ करने का प्रयत्न करूँ। यदि मैं ऐसा करता हूँ तो इस संसार में दुःखों को कम करके सुखों की वृद्धि करता हूँ। ऐसा ही भाव यज्ञ शब्द से ऋषिवर दयानन्द ने स्वमन्तव्यामन्तव्यप्रकाश में इसकी परिभाषा करते हुए लिया है।[२] उनके शेष लेखों में भी यही बात झलकती है।

यज्ञ शब्द के तीन प्रमुख अर्थ हैं—देवपूजा, सङ्गतिकरण और दान। जो व्यक्ति कुछ देता है—सुख देता है, आराम देता है, ज्ञान देता है—वह देव है। उसका आदर-सत्कार करना देवपूजन है, सही उपयोग करना देवपूजा है। मैं नङ्गे पाँव चला जा रहा हूँ। रास्ते में काँटा पड़ा है, मेरे पाँव में चुभ जाता है, पीड़ा होती है। मेरे पास कुछ नहीं है काँटा निकालने के

लिए। बगल की कीकर से एक और काँटा तोड़कर पहले काँटे को निकालता हूँ। मुझे सुख मिलता है। जो काँटा कीकर से तोड़ा है, उसने मुझे आराम दिया, सुख दिया; मेरे लिए वह देवता है; और उसका सही उपयोग देवपूजा है। यज्ञ के लिए मैंने सामग्री का चयन तो कर लिया, यज्ञ-पात्र भी ले-लिए, यज्ञकुण्ड ले-लिया, घृत ले-लिया; मैं इनका सदुपयोग भी समझता हूँ; परन्तु इतने-मात्र से यज्ञ नहीं हो जाएगा। यज्ञ करने के लिए उन वस्तुओं का सङ्गतिकरण नितान्त आवश्यक है। सङ्गतिकरण से पहले मुझे उनके गुण-दोषों का विश्लेषण करके जो चीज जिस योग्य है उसके उपयोग पर ध्यान देना पड़ेगा। इसका तीसरा अर्थ दान है। देनेवाले की भावना जितना अधिक देने में होती है, सङ्गतिकरण उतना सुदृढ़ होता है। लेनेवाला जितना देवपूजन करता है, सङ्गतिकरण उतना सुदृढ़ होता है। सङ्गतिकरण के लिए आवश्यक है कि व्यक्ति में त्याग की भावना हो, दूसरे की बात समझने की चाह हो। आज व्यक्ति दूसरे को अपना मत समझाना चाहता है, दूसरे का विचार समझना नहीं चाहता। दूसरे के विचार को समझने का प्रयत्न करे तो सङ्गतिकरण सुदृढ़ हो सकता है, अन्यथा नहीं। जब केन्द्र में पहली बार जनता पार्टी की सरकार बनी थी, उस समय समाचार पत्रों में एक चित्र छपा था। चित्र था चौधरी चरणसिंह और मोरारजी देसाई का। एक का मुँह एक ओर था, दूसरे का दूसरी ओर। उससे बढ़िया चित्र छापा नहीं जा सकता था उन दोनों का। वे दोनों एक-दूसरे को अपनी-अपनी बात समझाना चाहते थे, दूसरे की बात समझना नहीं चाहते थे। उसका वही परिणाम निकला, जो निकलना था।

वस्तुतः आज संसार में इन तीनों बातों का अभाव है। छोटा बड़े का सत्कार नहीं करना चाहता; शिष्य अध्यापक का आदर नहीं करना चाहता और बच्चा माता-पिता का। बड़े के पास जो कुछ देने के लिए है, वह उसे देने के लिए उद्यत नहीं है। परिणाम यह है कि सङ्गतिकरण नहीं हो पाता। जब तक सङ्गतिकरण नहीं होगा, यज्ञ नहीं बन पाएगा और यज्ञ बने बिना कर्म श्रेष्ठ नहीं बनेगा। श्रेष्ठ कर्म नहीं है तो सुखों की वृद्धि नहीं होगी, दुःखों का बखेड़ा जकड़े रखेगा।

शास्त्रकारों ने यज्ञ-सामग्री, समिधाओं तथा घृत को अच्छी प्रकार शोधकर परख लेने की बात कही है। यदि बिना शोधे उनका मेल कराने का प्रयत्न किया जाएगा तो अच्छा नहीं होगा। ऋषिवर दयानन्द ने हव्य-द्रव्यों के विषय में बड़े प्यारे शब्दों में कुछ बातें लिखी हैं। समिधा

की चर्चा करते हुए वे लिखते हैं, "समिधा कीड़ा लगी, मलिन देशोत्पन्न और अपवित्र पदार्थ आदि से दूषित न हो, अच्छे प्रकार देख लेवें।"[३] वे पूरी तसल्ली करने की बात कहते हैं। यज्ञ के शेष द्रव्यों के विषय में वे लिखते हैं, "होम के सब द्रव्यों को यथावत् शुद्ध अवश्य कर लेना चाहिए, अर्थात् सबको यथावत् शोध-छान, देख-भाल, सुधारकर करें।"[३] एक अन्य प्रसङ्ग में वे लिखते हैं—"जितनी आहुति देनी हो, प्रत्येक आहुति के लिए चार मूठी चावल आदि लेके—अच्छी प्रकार जल से धोके पाकस्थाली में डाल अग्नि से पका लेवें।"[३] घी को अमृत (रसायन) माना गया है। घी के बारे में कहा जाता है "घी पिलाओ तो ज़हर तक उतर जाता है।" फिर भी ऋषि दयानन्द लिखते हैं, "घृतादि जोकि उष्णकर छान पूर्वोक्त सुगन्धादि पदार्थ मिलाकर तैयार"[३] किया गया हो। "घृत को तपा लेवे,—उस घी को अच्छे प्रकार देख लेवे।"[४] अतः ऋषि दयानन्द मानते हैं कि यज्ञ में जो सामग्री डाली जाए, जो घी तथा समिधाएँ प्रयोग की जाएँ, उनको अच्छी तरह परख लें, अच्छी तरह देख लें, अच्छी तरह जाँच लें।

समाज एक यज्ञ है। परिवार एक यज्ञ है। जिस संस्था में हम काम करते हैं, वह भी एक यज्ञ है। हम उस यज्ञ में अर्पित होनेवाली सामग्री हैं, हव्य-द्रव्य हैं, समिधाएँ हैं। यदि छोटा-सा अग्निहोत्र जो प्रातः या सायंकाल किया जाता है; उसमें यज्ञकुण्ड में घुन लगी समिधा नहीं डाली जानी चाहिए, कच्ची नहीं डाली जानी चाहिए, अपवित्र नहीं डाली जानी चाहिए, तो क्या परिवार के, समाज के, सङ्गठन के, संस्था के यज्ञ में घुन लगी हुई समिधा अर्पित करनी चाहिए? अगर घी को तपाकर, शोधकर, अच्छी तरह देखकर यज्ञ में आहुति देनी चाहिए तो क्या परिवार का हिस्सा बनने से पूर्व मुझे अच्छी तरह अपने-आपको परखना नहीं चाहिए, शोधना नहीं चाहिए? ऋषि दयानन्द के आने से पूर्व बाल-विवाह होते थे। ऋषि दयानन्द ने इनका विरोध किया। बाल-विवाह यज्ञ में कच्ची समिधा अर्पित करना था। वृद्ध-विवाह होते थे। उनका भी विरोध किया ऋषि दयानन्द ने। ये घुन लगी समिधा थी, यज्ञ में घुन लगी समिधा नहीं डाली जा सकती।

यदि हम अग्निहोत्र करना चाहते हैं; यज्ञमयी भावना से किसी भी काम को करना चाहते हैं तो हमें स्वयं को समिधा के रूप में अर्पित करने से पहले अपने अन्दर झांककर अपने गुण और दोष देखने पड़ेंगे।

यदि मेरे अन्दर अवगुण हैं तो अर्पित कर देने के पश्चात् दुर्गन्ध पैदा होगी, सुगन्धयुक्त वातावरण नहीं बन पाएगा।

व्यक्ति यज्ञ में अपने को अर्पित करने से पूर्व अपने-आपको तपाता है, परखता है। भारतीय स्वतन्त्रता-संग्राम के दिनों की बात है। भगतसिंह, राजगुरु और उनके अन्य साथी बैठे हैं। चर्चा चल रही है कि जिसे अंग्रेज़ पकड़ लेता है उसपर बड़े अत्याचार करता है। सर्दी का मौसम है, साथी बैठे अङ्गीठी ताप रहे हैं। राजगुरु एक सण्डासी उठाते हैं, आग में डाल देते हैं, बात करते रहते हैं। सिलसिला बात का आगे चलता है। थोड़ी देर पश्चात् आग में डाली सण्डासी लाल हो जाती है। राजगुरु उसे उठाकर बड़ी हसरत भरी निगाहों से देखते हैं; फिर अपनी छाती के बटन खोलते हैं; उस लाल-लाल सण्ड़ासी से अपना मांस पकड़ते हैं, जलाते हैं, खींच लेते हैं। भगतसिंह ने हाथ पकड़ लिया, बोले—"क्या हो गया है तुम्हें ? क्या कर रहे हो यह ?" राजगुरु ने कहा—"कुछ नहीं। स्वाधीनता की लड़ाई लड़ना चाहता हूँ, और तुम कहते हो अंग्रेज़ बड़े अत्याचार करता है। मैंने सोचा इससे अधिक क्या करेगा ? मेरे जिस्म की चमड़ी को गर्म चिमटों के साथ जला देगा; यदि मैंने उफ़ कर दी तो मैं इस यज्ञ में समर्पित करने के योग्य समिधा नहीं हूँ। यदि उफ़ न की तो मैं इस योग्य हूँ कि मुझे हव्य-द्रव्य के रूप में अर्पित कर दिया जाए।" इस तरह जब व्यक्ति अपने आपको परखता था, सुन्दर परिणाम निकलता था।

रामप्रसाद बिस्मिल देश की स्वतन्त्रता के लिए सर्वस्व होम कर देते हैं। फाँसी की कोठरी में बैठे हैं, बड़ा प्यारा उन्होंने अपना जीवन-चरित्र लिखा है। जिसने उसे न पढ़ा हो, अवश्यमेव पढ़े। विश्व के इतिहास में जेल के सींखचों के पीछे बैठकर तो अगणित पुस्तकें लिखी गईं; परन्तु फाँसी की कोठरी में बैठकर केवलमात्र दो पुस्तकें लिखी गई हैं—एक विदेशी ने लिखी है, दूसरी अमर शहीद रामप्रसाद बिस्मिल ने। फाँसी की कोठरी से लिखा उनका जीवन-चरित्र हिन्दी साहित्य की एकमात्र रचना है। बिस्मिल जेल की कोठरी में बैठकर अग्निहोत्र करता है। सोचता है मैंने भी क्या नाटक रच रखा है, एक छोटा-सा हवनकुण्ड, चार समिधाएँ अर्पित की, 'इदन्न मम' कहा और अग्निहोत्र हो गया। क्यों न इस राष्ट्र के कुण्ड में अपने देह की समिधा की आहुति देकर माँ भारती के प्रति अपना ऋण उतारने का प्रयत्न करूँ ? और जिस दिन

उसकी बारी आती है फाँसी के फन्दे को चूमने की—कहते हैं रामप्रसाद बिस्मिल का भार बढ़ जाता है। अंग्रेज़ ने पूछा—"बताओ रामप्रसाद बिस्मिल किस संस्था में तुमने यह ट्रेनिङ्ग ली है ? कौन है तुम्हारा आचार्य?" बिस्मिल आज अपनी परीक्षा में सफल हुआ है, अतः वह गर्व के साथ कहता है—"जानना चाहते हो ? मेरी वह संस्था आर्यसमाज है और मेरा वह आचार्य दयानन्द है, जहाँ मैंने अपने-आपको तपाकर, शोधकर इस तरह का बनाया है।"

यज्ञसामग्री एकत्र कर ली, परख भी ली। फिर भी तब तक यज्ञ नहीं होता जब तक किसी यजमान का चयन नहीं कर लेते। यजमान वह व्यक्ति है जो कोई पवित्र काम करने का संकल्प लेता है; मन में एक इरादा धारता है। महात्मा गांधी ने सत्य, अहिंसा के आधार पर यज्ञ रचा भारतीय स्वतन्त्रता-संग्राम का। गांधी इस यज्ञ के यजमान बने। यजमान का एक गुण है—वह पहली आहुति अपनी देता है। यज्ञमान कहता है—**अयं त इध्म आत्मा जातवेदः**। हे अग्ने ! तेरे लिए सबसे पहला ईंधन '**अयं आत्मा**'—यह यज्ञमान, स्वयं है। वह किसी और की नहीं, अपनी आहुति देता है। यह अन्तर रहा है भारतीय पद्धति से सोचनेवालों में और बाहर के लोगों में। यहाँ का आदमी कोई काम करने से पहले स्वयमेव उस रास्ते पर चलने का प्रयत्न करता था और दूसरों को अपना अनुकरण करने की बात कहता था। लेकिन बाहर के रंग में रंगा व्यक्ति मानता है कि जो मैं करता हूँ वह करना आवश्यक नहीं है; जो मैं कहता हूँ उसके अनुसार आचरण करो।

यजमान पहली आहुति अपनी देता है। याद करो मेवाड़ के उस अमर हुतात्मा महाराणा प्रताप को। एक प्रातः अपने बेटे के सिर पर हाथ रखके दूसरे हाथ में मेवाड़ की मिट्टी को लेकर सोचता है—आज मेवाड़ के ऊपर मेवाड़ियों का राज्य नहीं है, आज यहाँ हमारी सभ्यता और संस्कृति सुरक्षित नहीं है। मैं प्रतिज्ञा करता हूँ कि जब तक मेवाड़ पर मेवाड़ियों का राज्य स्थापित नहीं कर लूँगा तब तक चैन से नहीं बैठूँगा, बिछौने पर नहीं सोऊँगा, सोने-चाँदी के पात्रों में भोजन नहीं करूँगा। उस दिन महाराणा प्रताप ने जो यज्ञ आरम्भ किया था, उस दिन महाराणा प्रताप जिस यज्ञ के यजमान बने थे, वह यज्ञ १५ अगस्त, १९४७ को सम्पन्न हुआ जब भारत स्वाधीन हुआ। महात्मा गाँधी ने इस यज्ञ में अपनी आहुति दी थी। इस यज्ञ में एक के बाद एक अनेक

वीरों ने अपनी आहुति डाली थी। यजमान ने यज्ञ आरम्भ किया। याज्ञिकों का आह्वान किया। हुतात्माएँ आती रहीं। यज्ञ चलता रहा—

मैं अकेला ही चला था जानिबे मञ्जिल मगर।

लोग आते ही गए और काफ़िला बनता गया॥

कई बार यजमान जब यज्ञ करने लगता है तो उसकी समिधाएँ बग़ावत कर देती हैं। आर्यसमाज के इतिहास में स्वामी श्रद्धानन्दजी महाराज (महात्मा मुंशीराम) का नाम अमर है। उनके सुपुत्र इन्द्र विद्यावाचस्पति ने एक संस्मरण लिखा है। बात छोटी-सी है, परन्तु ऐसी है जिसे भुलाया नहीं जा सकता। वे लिखते हैं—पिताश्री ने सोच लिया कि गुरुकुल स्थापित करना है। गङ्गा के किनारे जहाँ और परिवारों के बच्चों को लेकर गए, हम दोनों बेटों को लेकर भी यज्ञ प्रारम्भ कर दिया। यजमान हैं स्वामी श्रद्धानन्द। पहली आहुति तो अपनी डाली जानी है, इसलिए इन्द्र और हरिश्चन्द्र दोनों को गुरुकुल में बैठा देते हैं। रात को उस जङ्गल में शेरों की आवाज आती थी, सुख-सुविधा का कोई साधन नहीं था, तपस्या का जीवन था। एक नया प्रयोग किया जा रहा था। पता नहीं था कि गुरुकुल का क्या भविष्य बनेगा ? यहाँ पढ़-लिखने के पश्चात् कुछ बनेगा भी या नहीं ? वहाँ दोनों भाईयों का मन नहीं लगता। एक दिन उन्होंने सोचा क्यों न जाकर पिताश्री को कह दें—'पिताजी ! यदि आपको गुरुकुल की धुन लगी है तो उसका दण्ड हमें क्यों ? आप चलाना चाहते हो गुरुकुल तो चलाओ ! हम जिस राह पर जाना चाहते हैं, हमें उसपर जाने दो।' दोनों ने निर्णय लिया; महात्माजी से समय माँगा, भेंट हुई। महात्मा मुंशीराम ने कहा—'बेटे ! बोलो क्या बात है ? क्या कहने आये हो ?' साहस बटोरा इन्होंने, बोले— 'पिताजी ! गुरुकुल में हमारा मन नहीं लगता। आप गुरुकुल चलाना चाहते हो, हम आपके रास्ते में नहीं आते, परन्तु हमें क्यों बाधित किया जा रहा है यहाँ रहने के लिए ? आज यज्ञ में अर्पित समिधा यज्ञकुण्ड से बाहर निकलना चाहती है; बग़ावत थी। इन्द्र विद्यावाचस्पति लिखते हैं—पिताजी बोले नहीं पर उनके चेहरे पर जो भाव था उसे जब हम दोनों भाइयों ने पढ़ा तो आत्मग्लानि हुई। क्यों ऐसा विचार अपने मन में आने दिया हमने ? बिना इस बात की प्रतीक्षा किए कि वे क्या उत्तर देंगे, हमने सिर झुकाया, मानों हम अपना अपराध स्वीकार कर रहे थे और उठकर चले आए। इन्द्र लिखते हैं कि हमें सारी उम्र इस बात का दुःख रहा है, हम प्रायश्चित करते

रहे हैं कि हमने उस यज्ञ के यजमान की भावनाओं के साथ खिलवाड़ की थी ।

चाहे कितना ही दृढ़सङ्कल्प व्यक्ति क्यों न हो, वह अकेला यज्ञ पूरा नहीं कर सकता । यजमान प्रातःकाल अग्निहोत्र करता है, तो वेदी के चारों ओर कुछ लोगों को बुलाकर बैठाता है । जब महात्मा गांधी ने स्वतन्त्रता-संग्राम आरम्भ किया तो पुकारा भारत के लोगों को । कहा—'आओ, मेरा साथ दो ताकि देश स्वतन्त्र करा सकूँ ।' नेताजी सुभाषचन्द्र बोस ने इस भारत भू से दूर खड़े होकर कहा—'हे मेरे देशवासियो ! आओ, तुम मुझे अपना सिर दो, अपना खून दो, मैं तुम्हें आज़ादी दूँगा । वह देखो लाल किले की दीवार । वह मेरे यज्ञ का यज्ञकुण्ड है । वह तुम्हें आहुत होने के लिए पुकारती है ।'

यजमान दूसरे को यज्ञ में हिस्सेदार बनने के लिए बुलाता है । जिनके सहयोग से वह यज्ञ करता है, उन्हें बराबर का भागीदार मानता है । आपने कभी ऐसा भी कोई मन्त्री और प्रधान देखा जो किसी व्यक्ति को कहे—'देखिए भैय्या ! आप एक दिन में अस्सी रुपए कमाते हैं । एक घण्टे का समय मुझे आपका चाहिए । दस रुपये तुम्हें दूँगा । यज्ञ पर बैठ जाओ । तीन आदमी ले-लिए । तीस रुपए दिए, न उनका कोई एहसान, न और कुछ लेना न देना । उसके पश्चात् वे अपना रास्ता नापें और यह अपना काम करें । न, नहीं, बिल्कुल नहीं, बराबर का हिस्सा है । यज्ञ का सङ्कल्प एक व्यक्ति ने लिया था पर वह अपनी सीमाएँ जानता है, अपनी क्षमताएँ पहचानता है, जानता है अकेले काम नहीं कर पाएगा । हम कोई कारखाना चलाते हैं, उसमें किसी का सहयोग लेते हैं, परन्तु क्या उसे बराबर का हिस्सेदार मानते हैं ? कोई संस्था चलाते हैं, व्यापार करते हैं, कोई दफ्तर खोलते हैं, किसी सङ्गठन में काम करते हैं, क्या हम उसे बराबर का भागीदार मानने के लिए उद्यत हैं? कदापि नहीं । यदि हम उसे बराबर का हिस्सेदार मानने के लिए तैयार नहीं तो हमारा यह काम कुछ और हो सकता है पर यज्ञ नहीं । इसमें जो भावना है वह यज्ञमयी भावना नहीं है । हर व्यक्ति का यज्ञ के लिए आह्वान नहीं किया जा सकता, न उसे इस काम के लिए प्रयुक्त करना चाहिए। प्रत्येक व्यक्ति यजमान नहीं बन सकता। हर व्यक्ति हिस्सेदारी नहीं कर सकता, पर जिसे साथ लेकर चले हो, यदि उसे बराबर का हिस्सेदार नहीं मानते तो बड़ा पाप करते हो; यज्ञमयी भावना के विपरीत

काम करते हो, अपराध है यह।

यजमान अग्नि प्रज्वलित करता है। यह यज्ञाग्नि सङ्कल्प का प्रतीक है। अग्नि जितनी अधिक प्रज्वलित होगी, यज्ञ उतनी अच्छी प्रकार हो पाएगा। बुझी हुई अग्नि में आहुति नहीं देते। पहले उसे अच्छी तरह धधका लेते हैं। इसी प्रकार व्यक्ति का सङ्कल्प जब तक पक्का नहीं होगा, उसके जीवन में सोचा हुआ कार्य सम्पन्न नहीं हो पाएगा। मैं कोई काम करना चाहता हूँ, सोचता रहता हूँ करूँ या न करूँ—मेरे सङ्कल्प की अग्नि धीमी है, क्या परिणाम निकलेगा ?

इरादे बाँधता हूँ, सोचता हूँ, तोड़ देता हूँ।
कहीं ऐसा न हो जाए, कहीं वैसा न हो जाए॥

ऐसा व्यक्ति यज्ञ नहीं कर सकता। मैंने सन् १९७२ में पश्चिमी बर्लिन में एक जगह एक लौ जलती हुई देखी, जैसी दिल्ली में इण्डिया गेट पर जवान-ज्योति जलती है। वह भी शायद उनके शहीदों का स्मारक है। शहीदों को श्रद्धाञ्जलि देने के लिए उन्होंने जला रखी है। मैंने जानना चाहा कि यह प्रज्वलित अग्नि किस बात का प्रतीक है। वहाँ लगी शिला पर लिखा था कि यह अग्नि हमारे सङ्कल्प का प्रतीक है कि हम किसी दिन पूर्वी तथा पश्चिमी बर्लिन को मिलाकर एक करेंगे। आज से बीस-पच्चीस साल पूर्व इस बात की कल्पना भी नहीं की जा सकती थी कि इतनी मजबूत दीवार कभी गिरेगी, परन्तु उनका सङ्कल्प दृढ़ था, उनकी यज्ञाग्नि धधक रही थी। उसका परिणाम है कि जो बात उस समय सम्भव दिखाई नहीं देती थी, आज सत्य सिद्ध हुई है। धधकती अग्नि में ही आहुति देने का आनन्द है।

यज्ञ में एक ब्रह्मा होता है। ब्रह्माजी अपने घर से सामग्री लेकर नहीं आए, घी लेकर नहीं आये, उन्होंने यज्ञशाला को धोया नहीं, आसन को बिछाया नहीं, वह आहुति नहीं दे रहे, तो भी उसे सर्वाधिक सम्मान दिया जाता है; उस व्यक्ति के ज़िम्मे केवल एक काम है। वह बड़ी तीखी नज़र के साथ यज्ञ पर बैठे प्रत्येक व्यक्ति को देख रहा है। वह इस बात पर ध्यान देता है कि कौन अपना काम ठीक कर रहा है ? क्या मन्त्रपाठ ठीक हो रहा है ? सही समय पर आहुति दी जा रही है या नहीं ? यज्ञ के सिद्धान्तों एवं नियमों की अवहेलना तो नहीं हो रही ? कोई यज्ञ तब तक पूर्ण नहीं हो सकता, जब तक यज्ञ का कोई ब्रह्मा न हो।

हमारे गाँव का जीवन भी एक सात्त्विक यज्ञ था। चाहे किसी बहुत कुशल वास्तुविद (आर्किटेक्ट) से तो गाँव में घर नहीं बनवाये जाते थे, परन्तु जहाँ कुछ गलियाँ आकर मिलती थीं, वहाँ कोई चौपाल होती थी। यदि चौपाल न भी होती तो चारपाई डाले कोई बूढ़ा बुजुर्ग एक लाठी पास रक्खे वहाँ बैठा रहता था। जब मैं गाँव के स्कूल में पढ़ता था, तो इसका रहस्य समझ नहीं पाया था कि क्यों वहाँ बैठते हैं बुजुर्ग ? वह बुजुर्ग एक-एक बात देखता था। कोई बच्ची चली जा रही है, जैसे चलना चाहिए वैसे नहीं चल रही तो वह बुजुर्ग उसे झिड़क देता था। कोई ऐसा-वैसा आदमी गाँव में प्रवेश करना चाहता था, तो वह उसे पूछता था, रोकता था। गली में कोई बच्चा खेल रहा है, अगर वह कोई गाली-गलौच करता था तो उसे थप्पड़ लगाता था, उसे रोकता था। जब वह बच्चा घर जाकर कहता—माँ ! वह जो बाबा गली में बैठे हैं चारपाई पर, उसने मुझे थप्पड़ मारा तो माँ एक और थप्पड़ मारकर कहती थी—'तूने किसी को गाली दी होगी। नहीं तो वह बुजुर्ग, वह गाँव का सबसे बाइज़्ज़त (सम्मानित) आदमी, तुम्हें कुछ क्यों कहता ?' गाँव के जीवन का जो यज्ञ हो रहा था, उसका ब्रह्मा वह बैठा हुआ बुजुर्ग है। जब तक यह प्रथा रही, जब तक परिवार में, गाँव में, प्रान्त; राष्ट्र और संसार में कोई व्यक्ति ब्रह्मा के रूप में प्रतिष्ठित था तो सर्वत्र कल्याण की भावना रहती थी। जब से यह सिलसिला टूटा, आदमी स्वच्छन्द हो गया है, न कोई जीवन मूल्य रहे, न एक-दूसरे का मान और सम्मान रहा। जिन लोगों ने राष्ट्रपति और राज्यपाल के पद की कल्पना की, जाने क्यों की ? परन्तु मैं ऐसा सोचता हूँ कि राष्ट्र का एक यज्ञ है। प्रधानमन्त्री या मुख्यमन्त्री उस यज्ञ के यजमान हैं। राष्ट्र-निर्माण का सङ्कल्प लेकर चले हैं, परन्तु उस यज्ञ का कोई ब्रह्मा भी होना चाहिए। वह ब्रह्मा है राज्यपाल या राष्ट्रपति। आप ब्रह्मा सावधानी के साथ चुनिए। चुन लेने के पश्चात् ब्रह्मा की अवहेलना मत कीजिए। नहीं तो सारा ढांचा चरमरा जाएगा।

जैसे यजमान हर व्यक्ति नहीं बन सकता, उसी तरह प्रत्येक व्यक्ति ब्रह्मा भी नहीं बन सकता। हर आदमी तो समिधा भी नहीं हो सकता। आज के आदमी का रूप देखकर विचित्र आश्चर्य होता है। एक बार कुछ पशु-पक्षी इकट्ठे हुए और भगवान् से शिकायत करने लगे। गिरगिट ने कहा—'मुझे बहुत बदनाम कर रखा है कि मैं रङ्ग बदलता हूँ; पर

उतने तो नहीं बदलता जितने मनुष्य बदलता है। कहावत मेरे नाम पर क्यों है ? आदमी की तरह रङ्ग बदलता है—यह कहावत क्यों नहीं ?' पास बैठा था एक बगुला, उसने कहा—'तू तो इतनी बात पर ही दुःखी हो गया। मैं तुझसे भी ज्यादा दुःखी हूँ।' पूछा—'तुम्हारा क्या बिगड़ गया ?' कहने लगा—'मेरी सफेद चादर देखकर आदमी ने सफेद कपड़े पहन लिये; पर उसका भीतर तो काला रहा। मैं तो फिर भी एक पाँव पर खड़े होके कुछ साधना करता हूँ, तपस्या करता हूँ। जितना मेरा पेट माँगता है उतना ही किसी को खाता हूँ। यह तो मुझसे अधिक दूसरों के प्राण पी रहा है और उसके बाद कहा बगुला भक्त जाता है; आदमी जैसा भक्त कहकर क्यों नहीं पुकार जाता ?' साँप बोला—'तुम्हारा वह हाल तो नहीं जो मेरा है। मैं तो जहाँ-कहीं मिल जाता हूँ, आदमी मुझे मारना चाहता है। मेरा कसूर क्या है? मैं सिर्फ उसे डसता हूँ जो मेरे सिर पर पाँव रखता है, मुझे कुचलना चाहता है, पर कभी आदमी ने अपने रूप को देखा। पड़ोस में रहनेवाले आदमी ने भले इसका कुछ नहीं बिगाड़ा, तो भी यह उसे डस लेना चाहता है। जहरीला यंह अधिक है, बदनाम मुझे किया जाता है।' उल्लू ने कहा—'मेरी तो और भी बुरी हालत है। मैं एकान्तवासी हूँ। उजाड़ पसन्द है मुझे। वहाँ बैठा रहता हूँ। मैंने कोई बस्ती आज तक नहीं उजाड़ी। मैंने किसका घर उजाड़ा है ? किन्हीं दो के बीच लड़ाई नहीं कराई। कोई नगर नष्ट नहीं किया, कोई देश नष्ट नहीं किया, परन्तु आदमी उल्लू-उल्लू कहकर मेरा उपहास करता है। धरती पर जितनी बस्तियाँ उजड़ी हैं, सब आदमी ने उजाड़ी हैं, मैंने नहीं उजाड़ी। हिरोशिमा और नागासाकी पर बम मैंने नहीं फेंका। बम तो इसने फेंका है, बदनाम मुझे किया जा रहा है।'' लगता है इनका रोना सच्चा है। ऐसा व्यक्ति न यजमान बन सकता है, न समिधा बन सकता है, न ब्रह्मा बन सकता है।

सब-कुछ हो लिया, आहुतियाँ दे लीं, उसमें से जो प्यारा धूम निकलता है यजमान उसे बन्द करके अपने पास सीमित नहीं रख सकता। यज्ञशाला में आठ खम्भे होते हैं, उनके ऊपर एक छत होती है, चारों ओर से खुला होता है। जो व्यक्ति यज्ञ करता है वह खुले में करता है। वही यज्ञ की समिधा से निकला हुआ धूम जो हमें जीवन देता है, यदि बन्द कमरे में बैठकर यज्ञ किया जाए तो वह धुआँ मौत का कारण बन सकता है। यदि यजमान यह सोचे कि यह सब-कुछ किया तो उसने है, सामग्री

उसकी है, परिश्रम उसका है, लाभ किसी दूसरे व्यक्ति को क्यों दे ? तो काम नहीं चलेगा। इसी तरह चाहे किसी ने व्यापार किया, चाहे कोई संस्था चलाई, कोई स्कूल चलाया, कोई कॉलिज चलाया, अगर उसके धन को अकेला खा लेना चाहे तो यह यज्ञमयी भावना नहीं है। यज्ञमयी भावना तो 'इदन्न मम' है; यह मेरे लिए नहीं है, राष्ट्र के लिए है, सबके लिए है, किसी अकेले के लिए नहीं।

यह सब-कुछ कर लेने के बाद भी कुछ बच जाता है जिसे यज्ञशेष कहते हैं। क्या आपने ऐसा कोई व्यवस्थापक देखा है जो यज्ञ कर लेने के बाद थोड़ा-सा यज्ञशेष बाँट दे और जो बाकी बचे उसे अपने साथ घर ले-जाए। ऐसे व्यक्ति की सब निन्दा करेंगे। उसने नियम जो तोड़ा है। मैंने छोटा-सा यज्ञ किया और उसका यज्ञशेष अपने साथ नहीं ले-जा सकता, परन्तु मैंने जो व्यापार का यज्ञ किया, किसी दफ्तर में बैठकर कोई काम किया, जीवनभर पैसा कमाया। खर्चने के बाद जो कुछ बचा है, क्या उस बैंक-बैलेन्स (यज्ञशेष) पर मेरा अकेले का हक है ? जो थोड़ा-सा है उसे तो बाँटना चाहता हूँ, पर जो बाकी है उसे बाँटना नहीं चाहता। उसे संग्रह कर अपने पास रखना चाहता हूँ। चाहे ईरान का शाह हो और चाहे रोमानिया में अपने-आपको साम्यवादी कहनेवाला कोई नेता हो, जो यज्ञशेष को अपने पास रखने का प्रयत्न करता है, उसका यज्ञ सफल नहीं होता; विफल होता है। उसका परिणाम उसके लिए घातक होता है। जब शाह ईरान गए थे तो आँखों से बहते अश्रु ईरान की मिट्टी को गीला कर रहे थे। शाह ने गीली मिट्टी उठाकर मुट्ठी में ली, फिर जहाज पर चढ़ने से पहले अपनी जेब में डाल लिया उस मिट्टी को। यज्ञशेष बाँट देता, संग्रह न करता, तो यूँ वहाँ की मिट्टी को न तरसता।

यज्ञ करते समय बार-बार मन्त्र पाठ करते हुए कहते हैं—स्वाहा। स्वामी समर्पणानन्द ने इसका बहुत प्यारा अर्थ किया है। स्वामीजी स्वाहा का अर्थ करते हैं—ठीक हो गया। यह आवाज़ निकलनी चाहिए हर कर्म करने के बाद। यदि हर कर्म करने के बाद यह आवाज़ निकलती है तब तो यज्ञ है, यदि नहीं निकलती है तो यज्ञ नहीं है। अपने जीवन में यज्ञ किया था ऋषिवर दयानन्द ने। जब उसकी पूर्णाहुति देने लगे, अजमेर में पड़े हैं, रोम-रोम से विष फूटकर निकल रहा है। बहुत पीड़ा है, परन्तु उनके चेहरे पर मधुर मुस्कान है। मुखारविन्द से निकलता

है—'अहा तैंने अच्छी लीला की, तेरी इच्छा पूर्ण हो ।' ऋषि कह रहे हैं ठीक हो गया । जितना मौका मिला था, ठीक कर दिया । ऋषि का रोम-रोम स्वाहा कह रहा है । जैसा ज्ञान आत्मा में है, वैसा ही वाणी से बोल रहे हैं।[५]

स्वामी समर्पणानन्द ने एक और बहुत प्यारी बात कही । जब हम पूर्णाहुति देते हैं तो **"ओम् सर्वं वै पूर्णः स्वाहा"** बोलते हैं । इसका अर्थ करते हुए स्वामीजी[६] कहते हैं—"कोई कार्य ठीक हुआ तब जानो, जब वह पूर्ण हो जावे ।" बीच में छोटी-मोटी सफलता मिल जाए, तो आराम से नहीं बैठना चाहिए, अभी लम्बा रास्ता पड़ा है।

अपने से बड़ों को देव समान समझकर उनकी पूजा के द्वारा प्रत्येक व्यक्ति अपने जीवन को सफल और सुखी बनावे तथा विश्व कल्याण हेतु बराबर वालों से सङ्गतिकरण के द्वारा कुछ ग्रहण करता हुआ छोटों के लिए दान देता चला जाए । यही सर्वोत्तम है । इसी के द्वारा विश्व का कल्याण सम्भव है । यही विचारधारा शान्ति और सुख के सागर में हिलोरें उत्पन्न कर सकती है । आपस का मेल, समन्वय, सबका यथायोग्य सम्मान, सबका पूरी लग्न से कर्त्तव्यपालन, सभी को फूलने-फलने का अवसर देते हुए परस्पर की उन्नति में सहयोग, स्नेह में ओत-प्रोत होकर मिलना तथा मिलकर सर्वहित के मङ्गलकार्य करना ही यज्ञ है । स्वयं उन्नति करके दूसरों को उन्नत होने में सहयोग देनेवाला, विश्व को खिलाकर स्वयं खानेवाला व्यक्ति यज्ञ ही कर रहा है ।

अग्निहोत्र इसी विशाल यज्ञ का एक मुख्य अङ्ग तथा प्रतीक है। यह वैसा ही नित्यकर्म है जैसा वेद का स्वाध्याय और सन्ध्योपासना। हम अग्निहोत्र करते हुए विश्वयज्ञ में अपना भाग समर्पण कर रहे हैं । इसके मन्त्र ऐसे पवित्र, समन्वय, त्याग एवं बलिदान के भाव मानव हृदय में उदय करते हैं कि उनके द्वारा सर्वमङ्गल अवश्यम्भावी है । अग्निहोत्र में जो समर्पण की तत्परता, निज कर्त्तव्य में लग्न और आत्मोत्सर्ग की अनुपम शिक्षा मिलती है; उसी से मानव का अभ्युदय और कल्याण साथ-साथ होता है । अग्निहोत्र करनेवाला मनुष्य ही राष्ट्र का मेरुदण्ड है। **केवलाघो भवति केवलादी**—अकेला खानेवाला पाप खाता है—का ठीक अर्थ वही समझता है । **तेन त्यक्तेन भुञ्जीथाः** में उसका विश्वास है। यज्ञमयी भावना से भरकर **इदमग्नये—इदं न मम** कहनेवाला व्यक्ति ही राष्ट्र पर आये सङ्कट के समय भामाशाह का रूप धारण करके अपना

सर्वस्व न्यौछावर करता है ।

ऐसी यज्ञमयी भावनावाले व्यक्ति का ही शान्तिपाठ का मन्त्रोच्चारण सार्थक है । वही कह सकता है—हे परम पिता परमात्मान् ! इस द्युलोक में, पृथिवी पर, अन्तरिक्ष में, जल में, वायु में, ओषधियों में सर्वत्र शान्ति हो । शान्ति में भी शान्ति हो । तभी मुझे भी शान्ति मिलेगी ।

द्रष्टव्य :

१. ऋषि दयानन्द सरस्वती, सत्यार्थप्रकाश, द्वादश समुल्लास
२. ऋषि दयानन्द सरस्वती, सत्यार्थप्रकाश—स्वमन्तव्यामन्तव्यप्रकाश, "यज्ञ उसको कहते हैं कि जिसमें विद्वानों का सत्कार, यथायोग्य शिल्प अर्थात् रसायन जोकि पदार्थविद्या उससे उपयोग और विद्यादि शुभ गुणों का दान, अग्निहोत्रादि जिनसे वायु, वृष्टि, जल, ओषधि की पवित्रता करके सब जीवों को सुख पहुँचाना है, उसको उत्तम समझता हूँ ।"
३. ऋषि दयानन्द सरस्वती, संस्कारविधि, सामान्यप्रकरण
४. ऋषि दयानन्द सरस्वती, सत्यार्थप्रकाश, तृतीय समुल्लास
५. ऋषि दयानन्द सरस्वती, सत्यार्थप्रकाश के तृतीय समुल्लास में लिखते हैं, "स्वाहा शब्द का अर्थ यह है कि जैसा ज्ञान आत्मा में हो वैसा ही जीभ से बोले, विपरीत नहीं ।"
६. स्वामी समर्पणानन्द सरस्वती, पञ्चयज्ञप्रकाश, समर्पण-शोध संस्थान, साहिबाबाद, गाजियाबाद, (१६८६), पृष्ठ ६८; यज्ञ-प्रेमियों के लिए स्वामी दीक्षानन्द सरस्वती कृत अग्निहोत्र-सर्वस्व (समर्पण-शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित) पठनीय सामग्री प्रस्तुत करती है।

३

प्रक्रिया

शास्त्रों में यज्ञशाला, यज्ञकुण्ड, यज्ञपात्र, हव्यद्रव्य तथा यज्ञ करने की विधि का विस्तृत विवरण मिलता है। संक्षेप में आवश्यक जानकारी इस प्रकार है—

यज्ञशाला

अग्निहोत्र के लिए यज्ञमण्डप का निर्माण किया जाता है। महर्षि दयानन्द के अनुसार "यह (यज्ञशाला) अधिक-से-अधिक सोलह हाथ समचौरस चौकोण और न्यून-से-न्यून आठ हाथ की हो। जहाँ भूमि अशुद्ध हो तो दो-दो हाथ यज्ञशाला की ओर जितनी गहरी वेदी बनानी हो उतनी पृथिवी खोद अशुद्ध मिट्टी निकालकर उसमें शुद्ध मिट्टी भरें। यदि सोलह हाथ की समचौरस हो तो चारों ओर बीस खम्भे और जो आठ हाथ की हो तो बारह खम्भे लगाकर उनपर छाया करें। वह छाया की छत वेदी की मेखला से दस हाथ ऊँची अवश्य होवे और यज्ञशाला के चारों दिशा में चार द्वार रक्खें।"[१]

यज्ञकुण्ड

यज्ञकुण्ड सोना, चाँदी, तांबा, लोहा व मिट्टी का बनवाया जा सकता है।[२] यह केवल ऊपर से खुला रहता है। इसका परिमाण आहुतियों की संख्या पर निर्भर है।

सत्यार्थप्रकाश में प्रतिदिन के यज्ञ के लिए यज्ञकुण्ड का परिमाण इस प्रकार लिखा है—"एक किसी धातु या मट्टी की, उपर १२ वा १६ अंगुल चौकोर, उतनी ही गहरी और नीचे ३ वा ४ अंगुल परिमाण से वेदी इस प्रकार बनावे, अर्थात् ऊपर जितनी चौड़ी हो उसकी चतुर्थांश नीचे चौड़ी रहे।"[३] बृहद् यज्ञों के लिए यज्ञकुण्डों के परिमाण की चर्चा महर्षि दयानन्द सरस्वती ने संस्कारविधि के सामान्य-प्रकरण में की है।

यज्ञकुण्ड का यह आकार पूर्णतया वैज्ञानिक है। इस प्रकार की बनावट

का कुण्ड कम लकड़ी जलाने पर भी अधिक गर्मी पैदा करता है। इसमें समिधाओं को इस प्रकार रखा जाता है कि वायु का प्रवेश न तो एकदम अधिक और न बिलकुल ही कम हो जाए। यज्ञकुण्ड की बनावट तथा समिधाओं के चयन करने की विधि हवन के लिए वाञ्छित एवं आवश्यक गर्मी पैदा कर देती है। यज्ञकुण्ड के नीचे के भाग में लगभग ३००° सेल्सियस तापांश होता है। ज्वालाओं के ऊपर तापांश १३००° सेल्सियस तक पहुँच जाता है। शेष भाग में भिन्न-भिन्न स्थान पर अलग-अलग तापांश होता है। अग्नि के कुछ धीमी हो जाने पर तापांश २५०° से ६००° सेल्सियस तक रह जाता है। हवन के लिए गर्मी की यह मात्रा भी पर्याप्त है। कार्य प्रारम्भ होने के पश्चात् शेष सभी रासायनिक क्रियाएँ इस तापांश पर सुविधापूर्वक पूर्ण हो जाती हैं।

यज्ञपात्र

यज्ञ तथा अन्य धार्मिक कृत्यों के लिए साधारणतया सोना, चाँदी, तांबा और लकड़ी से बने पात्र ही प्रयोग में लाए जाते हैं। सोना और चाँदी पर अन्य पदार्थों तथा वायु का प्रभाव नहीं होता, परन्तु ये धातुएँ महँगी होने के कारण तांबे के पात्र ही अधिक प्रयोग किए जाते हैं। तांबे के पात्रों का एक लाभ यह भी है कि इसमें कृमि-नाशक गुण होता है। उदाहरणार्थ—हैजा आदि के दिनों में पानी में इन व्याधियों के रोगाणु उत्पन्न हो जाते हैं, किन्तु यदि इस जल को एक दिन पूर्व ताम्र-पात्र में भरकर रख दिया जाए तो रोगाणु मर जाते हैं। फिर यह पानी कोई व्याधि उत्पन्न नहीं कर सकता। अमरीका के प्रसिद्ध डॉक्टर मुनेरने ने अनेक प्रयोगों द्वारा यह सिद्ध किया है कि तांबे के पतरे और बर्तन आदि पर किसी भी रोग के कीटाणु जीवित नहीं रह सकते। ठठेरों को मलेरिया, हैजा आदि संक्रामक रोग शायद ही कभी होते हों।

यज्ञीय पात्रों में चमचा, चिमटा, आज्यस्थाली (घृत रखने का पात्र), प्रोक्षणीयपात्र (हाथ धोने के जल के लिए), शाकल्यपात्र (सामग्री आदि के लिए), आचमनी आदि मुख्य हैं। सभी पात्रों को प्रतिदिन साफ करना आवश्यक है।

प्रक्रिया

हवन करने के समय यज्ञवेदी, यज्ञसामग्री और पात्रों को पूर्णतया साफ और शुद्ध करके अग्निहोत्र करनेवाले यज्ञमण्डप में यज्ञकुण्ड के चहुँ ओर

आसन ग्रहण करते हैं । सर्वप्रथम आचमन और अङ्गस्पर्श करके ईश्वर-स्तुति-प्रार्थनोपासना मन्त्रों का गायन करने के पश्चात् यज्ञकुण्ड में समिधाओं का चयन किया जाता है। फिर कपूर जलाकर अग्नि प्रज्वलित की जाती है । प्रत्येक क्रिया करने से पूर्व निश्चित वेदमन्त्रों का पाठ किया जाता है। अग्नि सुविधा से जलती रहे, इस हेतु घृत में भिगोई हुई तीन समिधाएँ यज्ञकुण्ड में रखकर घृत की पाँच आहुतियाँ दी जाती हैं। तदुपरान्त यज्ञकुण्ड के चारों ओर जल छिड़का जाता है । फिर घृत और सामग्री की आहुतियाँ देकर इस पवित्र कार्य को पूर्ण किया जाता है ।

द्रष्टव्य :

१. ऋषि दयानन्द सरस्वती, संस्कारविधि, सामान्य प्रकरण
२. पण्डित युधिष्ठिरजी मीमांसक ने भूमि में वेदि खोदने का तर्क सम्मत निषेध किया है एवं ऋषि दयानन्द के कथन का भी स्पष्टीकरण किया है। द्रष्टव्य : युधिष्ठिर मीमांसक, मेरी दृष्टि में स्वामी दयानन्द और उनका कार्य, रामलाल कपूर ट्रस्ट, बहालगढ़, प्रथम संस्करण, संवत् २०४८, पृष्ठ ८-६
३. ऋषि दयानन्द सरस्वती, सत्यार्थप्रकाश, तृतीय समुल्लास

४
समिधा

यज्ञाग्नि प्रज्वलित रखने के लिए प्रयोग किये जानेवाले काष्ठ को समिधा अथवा इध्म कहते हैं। प्रत्येक लकड़ी की समिधा नहीं बनाई जा सकती। यज्ञ में कुछ विशेष लकड़ियाँ ही प्रयुक्त होती हैं। अग्निहोत्र में प्रयोग की जानेवाली समिधा के कुछ गुण निम्नलिखित हैं—

१. लकड़ी सुविधापूर्वक जलनेवाली हो। छालयुक्त लकड़ी अधिक गुणकारी होती है। आह्निक सूत्रावली में त्वचारहित समिधा का निषेध किया गया है—**न विनिर्मुक्तत्वचा चैव।**

२. लकड़ी मलिन, दूषित एवं कीड़ा लगी हुई न हो।

३. जलने पर दुर्गन्ध और अपना धुआँ न दे।

४. यदि जलकर राख हो जाए तो अधिक ठीक है। कोयला बनानेवाली लकड़ी कम उपयोगी है।

शतपथब्राह्मण (१.३.३.२०) में समिधा के लिए निम्नलिखित वृक्षों का विधान किया गया है :

यदि पालाशान्न विन्देत्। अथोऽअपि वैकंकताः स्युः।
यदि वैकंकतान्न विन्देदथोऽअपि कार्ष्मर्यमयाः स्युः।
यदि कार्ष्मर्यमयान्न विन्देदथोऽअपि बैल्वाः स्युः।
अथो खादिरा अथो औदुम्बराऽएते हि वृक्षा
यज्ञियास्तस्मादेतेषां वृक्षाणां भवन्ति।

आह्निक सूत्रावलि में ढाक (पलाश, खंकरा), फल्गु, वट, पीपल, विकंकत (वंज) गूलर, चन्दन, सरल, देवदारु, शाल, खैर आदि का विधान किया है—

पलाश-फल्गु-न्यग्रोध-प्लक्षाश्वत्थ विकंकताः।
उदुम्बरस्तथा बिल्वश्चन्दनो यज्ञियाश्च मे॥
सरलो देवदारुश्च शालश्च खदिरस्तथा।
समिदर्थे प्रशस्ताः स्युरेते वृक्षा विशेषतः॥

वायुपुराण में भी ढाक, काकप्रिय, बड़, पिलखन, पीपल, विकंकत, गूलर, बेल, चन्दन, पीतदारु, शाल, खैर आदि को यज्ञोपयोगी वृक्ष माना है ।

ग्राह्याः कण्टकिनोऽप्येवं यज्ञिया एव केचन ।
पूजिताः समिदर्थेषु पितॄणां वचनं तथा ॥

ऋषि दयानन्द सरस्वती ने यज्ञ के लिए पलाश, शमी, पीपल, बड़, गूलर, आम, बिल्व आदि की समिधा का विधान किया है ।[१] चन्दन, पलाश, आम आदि की लकड़ी उत्तम मानी गई हैं । इंग्लैण्ड आदि देशों में शाहबलूत (Oak), अफगानिस्तान और बिलोचिस्तान में बादाम की लकड़ी, जर्मनी में लैवेण्डर तथा भारत और इटली में युकेलिप्टस की लकड़ी यज्ञ-समिधा के रूप में प्रयुक्त हो सकती है ।

लकड़ी का मुख्य भाग सेलुलोस तथा लिग्नोसेलुलोस होता है । इनके अतिरिक्त लकड़ी में कुछ गोंद, राल, वाष्पशील तेल तथा अम्ल, वसीय अम्ल और अन्य अकार्बनिक पदार्थ भी होते हैं । बड़, गूलर तथा पीपल की छाल में क्रमशः १०.६, १४ तथा ३.८ प्रतिशत टैनिन होता है ।

लकड़ी तथा कोयले की प्रतिशत रासायनिक बनावट निम्नलिखित है—

	लकड़ी	कोयला
कार्बन	४८-५१	८२
हाईड्रोजन	६	५
ऑक्सीजन	४३	१२
नाइट्रोजन	०.०४-०.१	१

इस तालिका से स्पष्ट है कि कोयले में लकड़ी की अपेक्षा कार्बन की मात्रा अधिक है । फिर भी हवन में अग्नि प्रज्वलित रखने के लिए कोयले का प्रयोग नहीं किया जाता; क्योंकि यह जलते समय कार्बन मोनोऑक्साइड नामक जहरीली गैस उत्पन्न करता है । यज्ञ में अग्नि जलाने के लिए आज्य के रूप में तेलों का उपयोग भी नहीं किया जाता, क्योंकि ये जलने पर दुर्गन्ध उत्पन्न करते हैं, अतः शास्त्रकारों ने यज्ञ में समिधा तथा आज्य के रूप में लकड़ी एवं घृत के ग्रहण का ही विधान किया है ।

रचना-भेद के कारण लकड़ियों के गुणों में भी भेद होता है । कुछ

मुख्य लकड़ियों के औषध-सम्बन्धी गुण (मुख्यतया भावप्रकाश[२] तथा सुश्रुत[३,४] के आधार पर) निम्नलिखित हैं—

ढाक (पलाश) ***Butea frondosa***

ढाक सुविधा से जलती है। अग्निदीपक और वीर्यवर्द्धक है। गुदा के रोग, संग्रहणी तथा कृमिनाशक है। भावप्रकाश के अनुसार ढाक के बीजों को शहद में मिलाकर आँत के कीड़े निकालने की ओषधि बनाई जाती है। इसके पत्ते फोड़े-फुन्सियों को नष्ट करने के लिए प्रयोग किए जाते हैं।

पीपल (पिप्पल, बौधिदम) ***Ficus religiosa***

पीपल को पवित्र माना जाता है। यह दाह, कफ, पित्त, विष तथा रक्तविकार नाशक है। इसके बीजों का चूर्ण श्वास-रोग में लाभदायक है।

बड़ (वट) ***Ficus bengalensis***

बड़ शीतल, भारी तथा कसैला होता है। कफ, पित्त, वमन एवं ज्वर में लाभदायक है। कान्ति बढ़ाता है। इसका दूध अत्यन्त बलवर्द्धक है। इसके दूध को बताशे में रखकर सेवन करने से प्रमेह रोग दूर हो जाता है।

गूलर (उदुम्बर, हेमदुग्धक) ***Ficus glomerata***

गूलर कफ, पित्त तथा रक्तविकार को ठीक करता है। हड्डी को जोड़नेवाला तथा वर्ण को उत्तम करनेवाला है।

आम (आम्र) ***Mangifera indica***

आम का बौर शीतल तथा रुचिकारक है। यह कफ, पित्त, रक्तविकार तथा प्रमेह का नाश करता है। इसके पत्तों का धुआँ कुक्कुर खाँसी को नष्ट करता है। यूनानी मतानुसार आम की छाल रक्तस्राव को बन्द करनेवाली, वमन और अतिसार नाशक है।

चन्दन (चन्दन) ***Santalum album***

सर्वोत्तम चन्दन देखने में ऊपर से सफेद, गाँठदार; काटने में लाल; पीसने में पीला तथा स्वाद में कड़वा होता है। यह कफ, तृषा, पित्त, रुधिरविकार और दाहनाशक है। चन्दन की लकड़ी के बने हुए सन्दूकों

में रखी हुई वस्तुओं को कीड़ा नहीं लगता । यज्ञ में प्रायः इसका चूरा ही डाला जाता है । सफेद चन्दन का तेल सुजाक (आतशक) में लाभदायक है ।

अतः यज्ञ में प्रयोग की जानेवाली लकड़ियाँ अत्यन्त गुणशाली हैं। विभिन्न रोगों का नाश करती हैं । इसलिए जहाँ लकड़ी जलने पर गर्मी उत्पन्न करती है, वहाँ कई लाभदायक पदार्थ भी बनाती है । इनकी रासायनिक बनावट की चर्चा डिमोक,[५] कीर्तिकर तथा वसु[६] व चोपड़ा[७] ने अपने ग्रन्थों में की है ।

द्रष्टव्य :

१. ऋषि दयानन्द सरस्वती, संस्कारविधि, सामान्यप्रकरण

२. भावप्रकाश निघण्टु (श्री भावमिश्रकृत), टीकाकार विश्वनाथ द्विवेदी, मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली (१९५९)

३. Bhaskar Govind Ghanekar, Sushruta Samhita with Hindi Commentary, Vol. I, (Sutra and Nidansthan), Mehar Chand Lachhmandas, Lahore (1936)

४. सुश्रुत-संहिता, टीकाकार शम्भुनाथ पाण्डेय, श्री सरस्वती पुस्तकालय, चौक कानपुर (१९५२)

५. W. Dymock, C.G.H. Warden and D. Hooper, Pharmacographia Indica, Vol. I-III, Thacker, Spink & Co., Calcutta (1890-91)

६. K.R. Kirtikar and B.D. Basu, Indian Medicinal Plants, Vol. I-II, Bishen Singh Mahendra Pal Singh, New Connaught Place, Dehradun (1984)

७. R.N. Chopra, I.C. Chopra, K.L. Handa and L.D. Kapur, Indigenous Drugs of India, Dhur and Sons, Calcutta (1958)

नोट : इस पुस्तक में जो वैज्ञानिक एवं तकनीकी शब्द प्रयुक्त हुए हैं उनका आधार "बृहत् पारिभाषिक शब्दसंग्रह, विज्ञान : खण्ड १ तथा २, केन्द्रीय हिन्दी निदेशालय, भारत सरकार (१९७३)" है।

५

सामग्री

शतपथब्राह्मण (११.३.१.२-४) में महाराज जनक ऋषि याज्ञवल्क्य से पूछते हैं—

हे याज्ञवल्क्य ! क्या तुम अग्निहोत्र को जानते हो ?

हाँ, जानता हूँ, राजन् !

क्या है ?

बस दूध ही है ।

यदि दूध न हो तो किसकी आहुति दोगे ?

धान और जौ की ।

यदि धान या जौ भी न हो तो ?

जो भी अन्य ओषधियाँ हों ।

यदि अन्य ओषधियाँ भी न हों तो ?

जङ्गली ओषधियों की ।

यदि जङ्गली ओषधियाँ न हों तो ?

वनस्पति की ।

यदि वनस्पति न हों तो ?

जल की ।

यदि जल न हो तो ?

राजन् ! कुछ भी न हो तो भी यज्ञ करना ही चाहिए । श्रद्धा में सत्य का हवन करें ।

इस रोचक संवाद में अग्निहोत्र के लिए आवश्यक सभी हव्य पदार्थों की गणना ऋषि याज्ञवल्क्य ने कर दी है । सब वस्तुएँ न मिलें तो न सही; जो मिले, जितनी मिले, उसी से यज्ञ करें । यही भाव व्यक्त करते हुए ऋग्वेद (८.१०२.१९-२१) में भक्त भगवान से कहता है—"हे देव ! न मेरे पास गऊ है, न लकड़ी काटने के लिए कुल्हाड़ा । फिर भी यज्ञ तो करूँगा ही । जैसी-कैसी लकड़ियाँ लाया हूँ, उन्हें ही स्वीकार करो ।

मधुमक्षिका आदि का यह जूठन ही मेरा घृत है, देव।"

यज्ञ-सामग्री की चर्चा वेद में कई स्थलों पर आई है। यथा—

समिधाग्निं दुवस्यत घृतैर्बोधयतातिथिम्।
आस्मिन् हव्या जुहोतन॥ —यजुः० ३।१

"समिधाओं से यज्ञाग्नि प्रज्वलित करके उसे घृत से प्रबुद्ध करो। प्रदीप्त अग्नि में उत्तमोत्तम हवि की आहुतियाँ दो।"

घृतेन द्यावापृथिवी प्रोर्णुवाथाम्॥ —यजुः० ६.१६

"यज्ञ के द्वारा घृत आदि से पृथिवी को भर दो।"

घृतेन द्यावापृथिवी पूर्येथाम्॥ —यजुः० ५.२८

"हे दम्पती ! तुम यज्ञ के द्वारा द्युलोक और पृथिवी को घृताहुति से पूर्ण कर दो।"

वेद में यजमानों के लिए विधान किया गया है—

यमाय सोमं सुनुत यमाय जुहुता हविः॥ —ऋ० १०.१४.१३

"सोमलतादि ओषधियों को खींचो (निचोड़ो) और फिर हवनीय द्रव्यों को अग्नि में डालो।"

यमाय मधुमत्तमं राज्ञे हव्यं जुहोतन॥ —ऋ० १०.१४.१५

"हे यज्ञ करनेवालो ! बहुत मीठे, हवन करने योग्य पदार्थों से अग्निहोत्र करो।"

त्र्यम्बकं यजामहे सुगन्धिं पुष्टिवर्धनम्।
उर्वारुकमिव बन्धनान्मृत्योर्मुक्षीय माऽमृतात्॥

—यजुः० ३.६०

इस मन्त्र में हविर्द्रव्यों की चारों श्रेणियों—सुगन्धित, पुष्टिकारक, रोगनाशक तथा मिष्ट का सङ्केत है।

ऋषि दयानन्द ने भी यज्ञ-सामग्री के लिए निम्नलिखित चार प्रकार की वस्तुओं का विधान संस्कार-विधि में किया है—

"(प्रथम—सुगन्धित) कस्तूरी, केसर, अगर, तगर, श्वेत चन्दन, इलायची, जायफल, जावित्री आदि।

(द्वितीय—पुष्टिकारक) घृत, दूध, फल, कन्द, अन्न, चावल, गेहूँ, उड़द आदि।

(तीसरे—मिष्ट) शक्कर, सहत (शहद), छुहारे, दाख आदि।

(चौथे—रोगनाशक) सोमलता अर्थात् गिलोय आदि ओषधियाँ ।"[१]

सब द्रव्य यथावत् शुद्ध कर लेने चाहिएँ। जो वस्तुएँ धोई जा सकें उन्हें धोकर, सुखाकर साफ कर लेना चाहिए। सामग्री गली-सड़ी तथा कीड़ा लगी हुई नहीं होनी चाहिए। इसमें पर्याप्त घी मिला लेना चाहिए, जिससे सामग्री का रूखापन तथा तीक्ष्णता दूर हो जाए ।

घी को भी भली प्रकार शुद्ध कर लेना चाहिए। महर्षि दयानन्द के अनुसार सुगन्धित एवं सुसंस्कृत घी ही यज्ञ में प्रयोग किया जाना चाहिए:

"घृत को गरम कर छान लेवें और एक सेर घी में एक माशा केसर पीसकर मिलाकर पात्र में रख छोड़ें।"[२]

"घृतादि जोकि उष्ण कर छान पूर्वोक्त सुगन्ध्यादि पदार्थ मिलाकर पात्रों में रखा हो।"[३क]

"शुद्ध किये हुए सुगन्ध्यादि युक्त घी को तपाके ...."[३ख]

"जो घृत गरम कर, छानकर, सुगन्ध मिलाकर रक्खा हो ...."[३ग]

"संस्कृत घी अर्थात् जो गरम कर, छान, जिसमें कस्तूरी आदि सुगन्ध मिलाया हो ...."[३ग]

"......सेरभर घी में एक रत्ती कस्तूरी, एक मासा केसर, एक-एक मन घी के साथ सेर-सेर भर अगर, तगर और घृत में चन्दन का चूरा भी यथाशक्ति डाल ...."[३घ]

यज्ञ के लिए विशेष पाक बनाने का विधान भी है, जैसेकि सेरभर घी के मोहनभोग में रत्तीभर कस्तूरी, मासेभर केशर, दो मासे जायफल, जावित्री, सेरभर मीठा सब डालकर मोहनभोग बनाना। इसी प्रकार अन्य मीठाभात, खीर, खिचड़ी (लवणरहित), मोदक आदि होम के लिए बनाएँ।[१]

एक किलोग्राम सामान्य यज्ञ-सामग्री में साधारणतया निम्नलिखित द्रव्य होने चाहिएँ—

हर्मल, तुलसी के बीज (प्रत्येक एक ग्राम), तुलसी के पत्ते (दो ग्राम), नीम के पत्ते, नीम की निम्बोली, खूबकलां, पिस्ता, जावित्री, जायफल, चिरौंजी, चीड़ का बुरादा (प्रत्येक पाँच ग्राम); शतावर, मुनक्का, गाजवान, जंडी के पत्ते, पित्तपापड़ा, पीपल की छाल, आम के पत्ते, यूकेलिप्टस के पत्ते, सौंफ, कपूर, लौंग, चिरायता (प्रत्येक आठ ग्राम); गुलाब, हरड़, बहेड़ा, आँवला, अगर, तगर, कपूरकचरी, मुलहठी, नागरमोथा, असगन्ध, मकोय, इन्द्रजौ, बड़ी इलायची, तालीसपत्र, गोखरू, किशमिश, दालचीनी,

नागकेसर, पानड़ी (प्रत्येक बीस ग्राम); बादाम, सफेद चन्दन का चूरा, छुहारा, जौ, हरे मूँग, उड़द, चावल, बालछड़, कचूर, ब्रह्मी, बनफ़्साँ, नारियलगिरी (प्रत्येक तीस ग्राम); काले तिल, गिलोय तथा गुग्गुल (प्रत्येक चालीस ग्राम)। सामग्री में खाँड व घृत पर्याप्त मात्रा में मिला लेना चाहिए।

स्थान, ऋतु एवं अन्य परिस्थितियों के अनुसार यज्ञ-सामग्री के द्रव्यों तथा उनकी मात्रा में परिवर्तन करना चाहिए, (द्रष्टव्य परिशिष्ट १)। यज्ञ से वाञ्छित लाभ की सम्प्राप्ति के लिए हवि-द्रव्यों के गुणों एवं रासायनिक संघटन का ज्ञान आवश्यक है। द्रव्य-गुणों का प्राचीन शास्त्रकारों तथा रासायनिक संघटन का वर्तमान वैज्ञानिकों ने बड़ा विस्तृत विवेचन किया है। कुछ प्रमुख द्रव्यों के गुण इस प्रकार हैं—

कपूर (कर्पूर) *Cinnamomum camphora*§

कपूर वृक्ष की लकड़ी भाप के साथ आसवन क्रिया पर कर्पूर तैल देती है। इस तेल से कपूर बनाया जाता है। सुश्रुत ने कपूर को शीतल, हल्का, सुगन्धित, तृषा तथा अरुचिनाशक माना है। भावप्रकाश के अनुसार यह वीर्यवर्द्धक, नेत्रों के लिए हितकर, कफ, पित्त, दाह, तृषा, अरुचि एवं दुर्गन्धनाशक है। यूनानियों का विचार है कि कपूर विषैले तथा फैलनेवाले फोड़े-फुन्सियों में बहुत लाभ पहुँचाता है। यह क्षत को भरता है, अतः मरहमों में प्रयुक्त होता है। कपूर की धूनी जुकाम में लाभप्रद है।

कैम्फर आयल में कपूर, युजिनॉल, पाइनीन, फेलेण्ड्रीन, सीनिओल, डाइपैन्टीन, सैफ्रोल, टर्पिनिऑल तथा सेस्क्वीटर्पीन होते हैं।[४क]

घी (घृत) *Butyrum depuratum*

सुश्रुत (सूत्रस्थान ४५.९६-१११) में घी को अमृत तुल्य गुणकारी, आयु, स्मरणशक्ति, बुद्धि, ओज, तेज, वीर्य, सौन्दर्य को बढ़ानेवाला, अग्निदीपक, नेत्रों के लिए हितकर, ज्वर, पित्त, उदरशूल, मिर्गी, विष और कृमि-नाशक माना है। साँप के काटने पर घी पिलाया जाता है। गोघृत सुँघाने से आधासीसी के दर्द में लाभ होता है। शरीर में पित्त या पित्ती रोग उभरने पर घी गर्म करके पिलाया जाता है। घी क्षत को भरता है, अतः अनेक मरहमों आदि में प्रयोग किया जाता है। आयुर्वेद में गाय का घी सर्वोत्तम माना गया है।

---

§ क्रमशः हिन्दी, संस्कृत, लैटिन नाम।

घी उच्चतर कार्बाक्सिलिक अम्लों का मिश्रित ट्राइग्लिसराइड है। इसके मुख्य संतृप्त तथा असंतृप्त अम्ल ओलीक, पामिटिक, स्टिऐरिक, मिरिस्टिक अम्ल आदि हैं।

दूध (दुग्ध) *Lactus*

दूध पूर्ण आहार है। गाय का दूध सर्वश्रेष्ठ माना गया है। धारोष्ण गोदुग्ध तो अमृत-तुल्य है। दूध वीर्य, आयु, बल तथा बुद्धि को बढ़ाता है। वात व पित्त का नाश करता है। श्रम, अतिसार, बवासीर, तपेदिक, पाण्डुरोग, संग्रहणी, मूत्ररोग, हृदयशूल व मूर्च्छा में लाभदायक है। शरीर, हाथ, पैर और आँखों की जलन को दूर करता है। सुश्रुत (सूत्रस्थान ४५.४७-६४) में दूध के गुणों की विस्तृत चर्चा है।

गोदुग्ध में ८७.२ प्रतिशत पानी, ४.७५ प्रतिशत दुग्धशर्करा, ३.६० प्रतिशत दुग्ध-वसा, ३.० प्रतिशत केसीन, ०.४० प्रतिशत ऐल्बूमेन तथा ०.७५ प्रतिशत राख होती है।[५] दूध में विटामिन, ऐमीनो ऐसिड, कई प्रकार के खनिज पदार्थ तथा कुछ धातुएँ भी होती हैं। दूध की प्रोटीन सर्वोत्तम है। यह स्वयं ९७ प्रतिशत तक पच जाती है तथा दूसरे पदार्थों की प्रोटीन को भी पचने में सहयोग देती है। उदाहरणार्थ—यदि केवल गेहूँ खाई जाए तो इसकी प्रोटीन २० प्रतिशत तक पचती है, परन्तु गेहूँ के साथ दूध का प्रयोग करने से गेहूँ की प्रोटीन ६० प्रतिशत तक पच जाती है।

शहद (मधु) *Mel*

शहद अत्यन्त गुणकारी, शक्तिवर्द्धक तथा रक्तशोधक है। सुश्रुत (अध्याय ४५) ने मधु को अग्निदीपक, पित्त, कफ, प्रमेह, विष, तृषा, अतिसार को शान्त करनेवाला माना है। सुश्रुत (सूत्रस्थान ४५. १३२-१४६) में शहद के भेद तथा गुणों का विस्तृत वर्णन है। शुद्ध शहद आँख में लगाने से नेत्रों की ज्योति बढ़ती है। घाव पर लगाने से लाभ पहुँचाता है। यदि सर्दी के कारण गला बैठ जाए तो दिन में तीन-चार बार एक-एक चम्मच शहद चाटना चाहिए। सिरके में मिला हुआ शहद दाँत साफ करता है तथा मसूड़ों को शक्ति देता है। टायफाइड और पेचिश के रोगाणु इसके प्रयोग से मर जाते हैं।

शहद में लगभग ७५ प्रतिशत शर्करा (डेक्सट्रोस, लेवूलोज), २० प्रतिशत पानी तथा ५ प्रतिशत अन्य पदार्थ जैसे फलों के अम्ल, फूलों के सूक्ष्म

कण, सुगन्धि उत्पन्न करनेवाले तत्त्व और मोम आदि होते हैं।[६]

खाँड

खाँड वात और पित्तनाशक, स्निग्ध तथा वामक है। सफेद बूरा हल्का, शीतल और वीर्यवर्द्धक होता है। मिश्री हल्की, पित्त तथा वातनाशक है।

दाख (द्राक्षा) *Vitis vinifera*

द्राक्षा मीठी, ठण्डी, प्यास में लाभदायक, रक्तवर्द्धक एवं शोधक है। बैठे गले को लाभ पहुँचाती है। इसमें द्राक्षशर्करा की अधिकता होती है। इसकी रासायनिक बनावट लगभग इस प्रकार है—

द्राक्षशर्करा ५५.६ प्रतिशत, पानी २३ प्रतिशत, सेलुलोस १.६४ प्रतिशत, ऐल्बूमिनॉइड २.७ प्रतिशत, वसा ०.६६ प्रतिशत, राख १.३ प्रतिशत, अन्य नाइट्रोजनरहित पदार्थ १४..१ प्रतिशत।

अगर (अगुरू, क्रिमिजम्) *Aquilaria agallocha*

प्राचीनकाल में अगर इत्र तथा ओषधियाँ बनाने मे प्रयोग किया जाता था। भावप्रकाश के अनुसार यह गर्म, चरपरा, त्वचा के लिए हितकर, नेत्ररोग, कर्णरोग तथा शीत, वात और कफ नाशक है। सुश्रुत ने इसे कान्तिवर्द्धक तथा खुजली, कुष्ठ एवं कफनाशक माना है। इसकी लकड़ी को जल में औटाकर पीने से ज्वर की प्यास बुझ जाती है। यह लकड़ी अगरबत्ती बनाने में प्रयोग की जाती है। "यह कीड़ों को परे भगाती है; अतः इसका चूरा चर्म और वस्त्रों को जूँ तथा पिस्सुओं से बचाने के लिए प्रयोग किया जाता है।"[७]

अगर में एक उड़नशील तेल होता है जो ईथर में विलय हो जाता है। दूसरी राल होती है जो एल्कोहॉल में घुलनशील है। अगर में लगभग १ प्रतिशत वसीय अम्ल होते हैं।[४ख]

तगर (तगर) *Valeriana wallichii*

मध्यकाल में तगर जर्मनी, एशिया, यूनान और एशिया मायनर में सुगन्धित मसालों में प्रयोग किया जाता रहा है। यह मिर्गी, सिरदर्द, नेत्ररोग, रुधिरविकार, विषविकार और मूर्च्छा को दूर करता है। यूनानी मतानुसार गुर्दे के रोग तथा जोड़ों के दर्द में भी लाभदायक है। अनेक विषैले जीवों तथा कीटों को दूर भगाता है।

तगर में १४ प्रतिशत स्टार्च, ५-६ प्रतिशत शर्करा, ०.५६ प्रतिशत

वसीय अम्ल, १३ प्रतिशत एल्बूमिनॉइड, १० प्रतिशत पानी, १० प्रतिशत सेलुलोस, १० प्रतिशत लिग्निन आदि, ४ प्रतिशत गौंद, ३ प्रतिशत टैनिन तथा थोड़ी मात्रा में उड़नशील तेल, रेजिन (राल), सिट्रिक अम्ल, टार्टरिक अम्ल आदि होते हैं।[८क,६]

केसर (कुंकुम) *Crocus sativus*

मस्तक पर केसर का लेप करने से सिर-दर्द दूर हो जाता है। राजनिघण्टु ने इसे विषनाशक तथा भावप्रकाश ने कृमिनाशक माना है। वमन, खुजली, पित्त और चर्मरोग में भी लाभदायक है। इसका रंग α, β, γ क्रोसेटिन के कारण होता है। साधारण केसर में १५.६ प्रतिशत पानी, १३.३५ प्रतिशत स्टार्च एवं शर्करा, ०.६ प्रतिशत वाष्पशील (सगंध) तेल, ५.६३ प्रतिशत अवाष्पशील तेल, ४३.६४ प्रतिशत नाइट्रोजनरहित पदार्थ, ४.४८ प्रतिशत तन्तु तथा ४.२७ प्रतिशत राख होती है।[१०क]

कस्तूरी (मृगनाभिः) *Moschus moschiferus*

कस्तूरी गर्म, वीर्यवर्द्धक तथा कफ, वात, विष, वमन और शीत को हरनेवाली मानी गई है। जरा-सी कस्तूरी भी लाखों घनफुट वायु को सुगन्धित कर देती है। इसकी सुगन्ध अधिक फैलनेवाली तथा अन्य पदार्थों की सुगन्ध की अपेक्षा अधिक समय तक रहनेवाली है।

जायफल (जातिफलम्) *Myristica fragrans*

जायफल गर्म, तीक्ष्ण, हल्का, सुगन्धित, रुचिकारक, पौष्टिक, पाचक, स्वर के लिए हितकर, कफ, वात, खाँसी, पींनस, मुख की दुर्गन्ध, वमन तथा हृदय रोग-नाशक है। यूनानियों ने इसे तिल्ली, गठिया और लकवा में लाभदायक माना है। भावप्रकाश के अनुसार यह कृमिनाशक है। जायफल में ३०-४० प्रतिशत वसा, ५-१५ प्रतिशत वाष्पशील तेल तथा कुछ स्टार्च आदि होते हैं।[१०ख]

जावित्री (जातिपत्री) *Myristica fragrans*

जावित्री रुचिकारक, स्वादिष्ट और सौन्दर्यवर्द्धक है। कफ, खाँसी, वमन और तृषा को दूर करती है। भावप्रकाश इसे कृमिनाशक मानता है।

बड़ी इलायची (दिव्यगन्धा व कान्ता) *Amomum subulatum*

बड़ी इलायची चरपरी, हल्की तथा गर्म है। तृषा, विष, वमन, कफ, पित्त, खुजली, श्वास, रुधिरविकार, खाँसी और मूत्ररोग नाशक है।

छोटी इलायची (तीक्ष्णगन्धा व व्यःस्था) *Elettaria cardamomum*

छोटी इलायची चरपरी, शीतल तथा हल्की होती है । इसे धन्वन्तरी तथा भावप्रकाश ने श्वास, खाँसी, क्षय और बवासीर नाशक माना है । यह वमन और कफ में भी हितकर है ।

दालचीनी (बहुगन्धा व दारुसिता) *Cinnamomum zeylanicum*

दालचीनी, सुगन्धित, पौष्टिक, पाचक तथा कृमिनाशक है । खुजली, अतिसार, वमन, अरुचि, वात, पित्त एवं प्यास में लाभदायक है । यदि कफ के कारण स्वर बैठ जाए तो उसे ठीक कर देती है ।

दालचीनी में एक वाष्पशील तेल, म्यूसिलेज तथा स्टार्च आदि होते हैं। इसके तेल में मुख्यतया सिनेमिक ऐल्डिहाइड तथा थोड़ी मात्रा में टर्पीन, पाइनीन, लिनेलोल, युजिनॉल, फेलेण्ड्रीन आदि होते हैं ।[१०ग]

लौंग (लवंगः) *Syzygium aromaticus*

लौंग चरपरी, कटु, पाचक, नेत्रों के लिए हितकर, रुचिकारक तथा खांसी, हिचकी, उदरपीड़ा, वमन, प्यास, कफ, पित्त एवं क्षयरोग नाशक हैं। भुनी हुई लौंग मुँह में रखने से गले के दर्द में लाभ होता है । इसे माथे और नाक पर लगाने से सर्दी से बचाव रहता है । इसका तेल दन्त एवं दाढ़शूल में हितकर है ।

लौंग की साधारण प्रतिशत रासायनिक बनावट निम्नलिखित है—[८ख,१०घ]

पानी १६.४ प्रतिशत, नाइट्रोजनयुक्त पदार्थ ६ प्रतिशत, उड़नशील तेल १७ प्रतिशत, वसा ६.२ प्रतिशत, शर्करा १.३२ प्रतिशत, सेलुलोस १०.५६ प्रतिशत, अन्य नाइट्रोजनरहित पदार्थ ३७.७ प्रतिशत तथा राख ४.६ प्रतिशत ।

लौंग के तेल में युजिनॉल तथा टर्पीन होता है ।

तालीसपत्र (धात्रीपत्रम्) *Abies webbiana*

तालीसपत्र उष्ण, तीक्ष्ण और हल्का होता है । कफ, वात, अरुचि, गुल्म, श्वास, क्षयरोग, पित्त, रक्तविकार और मुखरोग नाशक है ।

पानड़ी (पाची)

पानड़ी के पत्तों की सुगन्ध के कारण वस्त्रों को कीड़ा नहीं लगता। यह रक्तस्रावरोधक तथा वायुनाशक है ।

नागरमोथा (चक्रांक्षा तथा कलापिनि) *Cyperus rotundus*

नागरमोथा कफ, पित्त, तृषा, दाह, श्रम, अतिसार, रक्तविकार, अरुचि, ज्वर तथा कृमिनाशक है। खाँसी में लाभदायक है। पेट के कीड़ों को मारता है।

इन्द्रजौ (कुटजबीजम्) *Holarrhena antidysentrica*

इन्द्रजौ को चरपरा तथा शीतल माना गया है। ज्वर, अतिसार, वमन, कुष्ठ, वात, कफ और शूल नाशक है। इसके बीज गर्म पानी में भिगोएँ, फिर इस जल के सेवन से पेट के मरोड़ दूर हो जाते हैं। श्वेत कुटजबीज तथा छाल ज्वर दूर करने में सिनकोना की तरह काम करते हैं; पर सिनकोना की भाँति बेचैनी, जी मिचलाना, सिरदर्द आदि नहीं होने देते। इन्द्रजौ (कुड़ा) की छाल मिश्री के साथ मिलाकर प्रयोग करने से ज्वरातिसार दूर हो जाता है। यूनानी मतानुसार इसका धुआँ बवासीर में लाभदायक है।

कपूरकचरी (गन्धपलासी) *Hedychium spicatum*

कपूरकचरी अरुचि, वमन, दुर्गन्ध, ज्वर, शूल, हिचकी तथा रक्तविकार में लाभदायक है।

कपूरकचरी में स्टार्च की मात्रा अधिक होती है। इसकी रासायनिक बनावट निम्नलिखित है—[४ग,११]

स्टार्च ५२.३ प्रतिशत, सेलुलोस आदि १५ प्रतिशत, पानी १३.६ प्रतिशत, ऐल्बूमिनॉइड तथा कार्बानिक अम्ल २-४ प्रतिशत, ग्लूकोसाइड १ प्रतिशत, गोंद २.८ प्रतिशत, राख ४.६ प्रतिशत।

कचूर (कर्चूरः, गन्धसारम्) *Curcuma zedoaria*

कचूर कटु, चरपरा और रुचिकारक है। खाँसी, वात, कफ, कुष्ठ, बवासीर, तिल्ली, मिर्गी आदि रोगों में लाभदायक है। कृमिनाशक, अग्निदीपक, दिल, दिमाग और मेदे को शक्ति देनेवाला है। इसका लेप मुँह की फुन्सियों को नष्ट करता है।

कचूर में लगभग ३६ प्रतिशत ऐल्बूमिनॉइड, १७.२ प्रतिशत स्टार्च, १०.९२ प्रतिशत तन्तु, १०.३१ प्रतिशत पानी तथा कुछ सुगन्धित तेल और शर्करा होती है।

बालछड़ (जटामांसी) *Nardostachys jatamansi*

बालछड़ पौष्टिक है। रक्तविकार, चर्मरोग, गले तथा सीने के रोगों, खाँसी, मूर्च्छा और अफारे को दूर करती है। नेत्र-ज्योति बढ़ाती है। बालों को काला करती है।

नागकेसर (नागपुष्पम्) *Mesua ferrea*

नागकेसर कुछ उष्ण है। आयुर्वेद के अनुसार यह रुधिर-विकार, वात, पित्त, कफ, दुर्गन्ध, तृषा और विष को नष्ट करता है। यूनानी मतानुसार यह पेट के कीड़े को मारता है, पित्त, कफ तथा विष-विकार को दूर करता है।

चिरौंजी (स्नेहबीजम्) *Buchanania lanzan*

चिरौंजी शीतल, धातुवर्द्धक, ज्वर और तृषा में लाभदायक है। इसे वात, पित्त, फुन्सी तथा खुजली नाशक माना जाता है।

चिरौंजी में ५८-५६ प्रतिशत वसीय अम्ल, २८ प्रतिशत ऐल्बूमि- नॉइड, ५.७ प्रतिशत पानी, २.५ प्रतिशत गोंद, २.८ प्रतिशत तन्तु तथा ३ ३ प्रतिशत राख होती है।[१२]

कुलिञ्जन (सुगन्धा, अग्रगन्धा) *Alpinia officinarum*

कुलिञ्जन खाँसी, कफ तथा वातनाशक है। यह रुचिकारक और स्वर को उत्तम करनेवाला है। मुख, हृदय तथा कण्ठ का शोधक है। यदि आवाज़ खराब हो गई हो तो कुलिञ्जन के प्रयोग से ठीक हो जाती है।

इसके तने में कृमिनाशक गुण है। इसका प्रयोग मुँह तथा शरीर के अन्य भागों की दुर्गन्ध नष्ट करने के लिए किया जाता है।[१३] कुलिञ्जन की जड़ में कैम्फॉलाइड, गैलेन्गिन तथा अल्पाइनिन पाए गए हैं। इसके तेल में मैथिल सिनिमेट, सीनिओल, कपूर आदि होते हैं।[१४]

सुगन्धबाला (बाला) *Pavonia odorata*

सुगन्धबाला की जड़ प्रायः पतली, कुछ मुड़ी हुई तथा सात-आठ इञ्च लम्बी होती है। यह सुगन्धियुक्त होती है तथा पेचिश और दस्त रोकने में लाभदायक है।

आँवला (आमलकी, शीतफला) *Phyllanthus emblica*

आँवला त्रिफला का प्रधान अङ्ग है। इसमें विटामिन सी की बहुलता होती है, स्वभाव से शीतल है, वीर्य, आयु और तेज को बढ़ाता है। यह

टूटी हड्डी को जोड़नेवाला तथा नेत्रों और बालों के लिए हितकर है। कफ और पित्त में लाभदायक है। बुखार और उसकी दाह को शान्त करता है। इसे रक्त को शुद्ध करनेवाला, रुचिकारक और श्वास तथा खाँसी का नाश करनेवाला माना गया गया है।

कच्चा आँवला कसैला होता है, परन्तु पक जाने पर स्वादिष्ट हो जाता है। कच्चे आँवले में पके हुए फल की अपेक्षा अधिक टैनिक ऐसिड होता है। यदि गुठली निकालकर बाकी फल को १००° सेल्सियस पर सुखाया जाए तो उसकी रासायनिक बनावट निम्नलिखित होती है—[१५]

टैनिन शर्करा आदि ३६.१ प्रतिशत, सेलुलोस १७.८ प्रतिशत, ऐल्बूमिनॉइड १३.०८ प्रतिशत, गोंद १३.७५ प्रतिशत, गैलिक अम्ल आदि ११.३२ प्रतिशत, खनिज पदार्थ ४.१२ प्रतिशत, नमी ३.८३ प्रतिशत।

बादाम (वाताद) ***Prunus amygadalus***

बादाम उष्ण, स्निग्ध, बलकारक, वीर्यवर्द्धक तथा वातनाशक है। इसका तेल बुद्धिवर्द्धक तथा मस्तिष्क-विकार नाशक होता है।

गिलोय (अमृतवल्ली) ***Tinospora cordifolia***

गिलोय कसैली, गर्म, हलकी, भूख बढ़ानेवाली, बलकारक और आयुवर्द्धक है। ज्वर, दाह, तृषा, रक्तदोष, वमन, पाण्डुरोग, खाँसी, कोढ़, कृमि, खूनी बवासीर तथा विषनाशक है। यह शक्कर के साथ पित्त को, घी के साथ वात को, सौंठ के साथ आमवात को और शहद के साथ कफ को नष्ट करती है।[१६] गिलोय में बर्बरीन नामक ऐल्केलॉइड विद्यमान है।[१०३]

नीम (निम्ब:) ***Azadirachta indica***

नीम का प्रत्येक भाग ओषधि के रूप में प्रयुक्त होता रहा है। यह नेत्रों के लिए लाभप्रद, अरुचि, विषविकार, कुष्ठ तथा कृमिनाशक और रक्तशोधक है। चर्मरोगों को दूर करता है।

यज्ञ-सामग्री में नीम के पत्ते डाले जाते हैं। इसके पत्ते वस्त्रों व पुस्तकों में रखने से कीड़े नहीं लगते। पत्तों को दही में पीसकर लेप करने से दाद मिट जाता है। नीम के पत्तों का तेज अर्क पिलाने से संखिया तथा अफीम विष उतर जाता है। इसकी पत्तियों में विटामिन ए पर्याप्त मात्रा में होता है।

नीम के तेल की मालिश करने से खुजली मिट जाती है। इसके तेल की रासायनिक बनावट के विषय में मतभेद है। हिलडिच और मूर्ति के

अनुसार इसमें १४.६ प्रतिशत पामिटिक अम्ल, १४.४ प्रतिशत सिट्रिक अम्ल, ६१.६ प्रतिशत औलीक अम्ल, ७.५ प्रतिशत लिनोलिक अम्ल तथा १.३ प्रतिशत एरेचिडिक अम्ल पाया जाता है।[१७]

गूगल (गुग्गुलः, देवधूपः, वायुघ्नः) ***Commiphora mukul= Commiphora wightii***

गूगल की धूनी देनेमात्र से ही नजला, ज्वर, स्वरनाली का प्रदाह, बवासीर तथा क्षय में लाभ हो जाता है। गूगल को कृमिनाशक, पाचन-शक्ति को बलवान् करनेवाला, सूजन, कफ, कुष्ठनाशक, वीर्यवर्द्धक, टूटी हड्डी को जोड़नेवाला, वात, प्रमेह, पथरी नाशक तथा रक्तशोधक माना गया है। गूगल तपेदिक नाशक हवन-सामग्री में डाला जाता है। यह क्षत को बहुत शीघ्र भरता है। अथर्ववेद (१९.३८.१) में कहा है कि जिसे गूगल की सुगन्ध प्राप्त होती है, उसे रोग पीड़ित नहीं करते।

न तं यक्ष्मा अरुन्धते नैनं शपथो अश्नुते।
यं भेषजस्य गुल्गुलोः सुरभिर्गन्धो अश्नुते॥

आर० एन० चोपड़ा ने इसकी रासायनिक बनावट की विस्तार से चर्चा की है।[१०च]

नारियल (नारिकेलः, सदाफलः) *Cocos nucifera*

कच्चे नारियल का पानी प्यास तथा मूत्र-सम्बन्धी रोगों में लाभप्रद है। इसकी गिरी शीतल, पौष्टिक, तृषा, वात, पित्त और रुधिरविकार- नाशक है। इसका तेल बालों को स्वस्थ और लम्बा करता है तथा उन्हें सफेद होने से रोकता है।

नारियल की गिरी की प्रतिशत बनावट इस प्रकार है—

पानी ४६.६ प्रतिशत, वसा ३६.० प्रतिशत, नाइट्रोजनयुक्त पदार्थ ५.५ प्रतिशत, लिग्निन २.६ प्रतिशत, राख ०.९६ प्रतिशत, अन्य नाइट्रोजनरहित पदार्थ ८.०६ प्रतिशत।

नारियल के तेल में ४५ प्रतिशत लौरिक अम्ल, २० प्रतिशत मिरिस्टिक अम्ल, १० प्रतिशत कैप्रिक अम्ल, ६ प्रतिशत कैप्रिलिक अम्ल, ७ प्रतिशत पामिटिक अम्ल, ५ प्रतिशत स्टिऐरिक अम्ल, २ प्रतिशत ओलीक अम्ल एवं २ प्रतिशत कैप्रोइक अम्ल होते हैं।[१८]

तिल (होमधान्यः, तिलः) *Sesamum indicum*

काले तिल सर्वश्रेष्ठ और वीर्यवर्द्धक होते हैं। सफेद तिल मध्यम और

लाल तिल गुणहीन माने गए हैं। साधारणतया तिल चरपरा, उष्ण तथा कफ, वात एवं पित्त-नाशक, बलकारी, बुद्धिवर्द्धक, अग्निदीपक, त्वचा के लिए हितकारी व दाँतों को उत्तम बनानेवाला होता है। तिल का तेल बाल बढ़ाता है और उन्हें काले रखता है।

तिल का लगभग ५० से ५५ प्रतिशत भाग वसीय अम्ल ग्लिसराइड होता है। तिल के तेल में विभिन्न ग्लिसराइडों की प्रतिशत मात्रा निम्नलिखित है—[१६]

ओलीक ग्लिसराइड ४८.१ प्रतिशत, लिनोलिक ग्लिसराइड ३६.८ प्रतिशत, पामीटिक ग्लिसराइड ७.७ प्रतिशत, सिट्रिक ग्लिसराइड ४.६ प्रतिशत, ऐराकिडिक ग्लिसराइड ०.४ प्रतिशत, लिग्नोसेरिक ग्लिसराइड ०.०४ प्रतिशत।

अन्न

यज्ञ में ऋत्वनुसार खाद्यान्न डालने का विधान भी शास्त्रकारों ने किया है। इसमें चावल, उड़द, जौ आदि मुख्य हैं। जौ कान्तिवर्द्धक, गले तथा चर्म-सम्बन्धी रोग, कफ, पित्त, खाँसी, श्वास एवं तृषा नाशक माना गया है। उड़द बलकारक, वीर्यवर्द्धक और मलभेदक है। यह श्वास, श्रम तथा बवासीर को दूर करता है।

खाद्यान्नों की प्रतिशत बनावट तालिका 'क' में दी गई है।

तालिका (क)

	चावल[२०क]	गेहूँ[२०ख]	जौ[२०ग]	चना[२०घ]	हरे मूँग[२०ङ]	उड़द
स्टार्च	७८.३	६८.४	७०.०	५३.८	५४.१	५५.८
पानी	१२.८	१२.५	१२.५	११.२	१०.८	१०.१
ऐल्बूमिनॉइड	७.३	१३.५	११.५	१६.५	२२.२	२२.७
वसा	०.६	१.२	१.३	४.६	२.७	—
तन्तु	०.४	२.७	२.६	७.८	५.८	४.८
राख	०.६	१.७	२.१	३.१	४.४	४.४

इस प्रकार यज्ञ सामग्री में डाली जानेवाली वस्तुएँ अत्याधिक उपयोगी हैं। इनके द्वारा रोगों का नाश तथा बल की वृद्धि सम्भव है।

द्रष्टव्य :

१. ऋषि दयानन्द सरस्वती, संस्कारविधि, सामान्यप्रकरण
२. ऋषि दयानन्द सरस्वती, पञ्चमहायज्ञविधि
३. ऋषि दयानन्द सरस्वती, संस्कारविधि, (क) सामान्यप्रकरण, (ख) गृहाश्रमप्रकरण—अग्निहोत्र, (ग) गृहाश्रमप्रकरण, (घ) अन्त्येष्टि-प्रकरण
४. W. Dymock, C.G.H. Warden and D. Hooper, Pharmacographia Indica, Vol. III, Thacker, Spink & Co., Calcutta (1890) (क) pp. 200-203, (ख) pp. 217-32, (ग) pp. 417-20
५. A.W. Blyth and M.W. Blyth, Foods: Their Composition and Analyses (1909)
६. E. Sieben, Z. der Rubenziicker Ind., (1884), 837
७. J.F. Dastur, Useful Plants of India and Pakistan, D.B. Taraporewala & Co. Ltd., Bombay (1964), pp. 31-32
८. W. Dymock, C.G.H. Warden and D. Hooper, Pharmacographia Indica, Vol. II, Thacker, Spink & Co., Calcutta (1891), (क) pp. 238, 413, (ख) pp. 20-23
९. R.N. Chopra and N.N. Ghosh, Indian J. Med. Res., 13,533 1926.
१०. R.N. Chopra, I.C. Chopra, K.L. Handa and L.D. Kapur, Indigenous Drugs of Indica, Dhur & Sons, Calcutta, (1958), (क) p. 324, (ख) p. 202, (ग) pp. 126-27, (घ) p. 172, (ङ) pp. 427-28, (च) p. 286
११. J.C. Thresh, Pharm. J., (3) XV, 361
१२. Satya Prakash, Agnihotra, The Sarvadeshik Arya Pratinidhi Sabha, Delhi, (1937)
१३. J.F. Dastur, Medicinal Plants of India and Pakistan, D.B. Taraporewala & Co. Ltd., Bombay (1977), p. 17
१४. R.N. Chopra et al (as above), p. 277
१५. रामेश बेदी, त्रिफला, हिमालय हर्बल इंस्टिट्यूट, गुरुकुल काङ्गड़ी, हरद्वार
१६. तुलना : K.R. Kirtikar and B.D. Basu, Indian Medicinal Plants, Vol. I. Bishen Singh Mahendra Pal Singh, New Connaught Place, Dehradun (1984), pp. 77-79

१७. T. P. Hilditch and K.S. Murti, J. Soc. Chem. Ind., 310 (1933) cf. R.N. Chopra et al, ibid., pp. 360-62

18. G.D. Elsdon and H. Hawley, Analyst, 38, 3-7 (1912)

१६. G.S. Jamieson and W.F. Baughman, J. Am. Chem. Soc. 46 775 (1924)

२०. A.H. Church, Food-Grains of India, Chapman and Hall, London (1886)
(क) p. 73, (ख) p. 95, (ग) p. 99, (घ) p. 128, (ङ) p. 151

अन्य उपयोगी सन्दर्भ ग्रन्थ—

1. The Wealth of India : Raw Materials, Vol. I-XI, Publication and Information Directorate, CSIR, New Delhi (1948-1972)
2. B.D. Basu (Major), Indian Medicinal Plants, Vol. I-IV, Periodical Experts, Delhi (1975)
3. R. Rastogi and B.N. Mehrotra, Compendium of Indian Medicinal Plants, Central Drug Research Institute, Lucknow and Publication and Information Directorate, New Delhi (1993)
4. U. Singh, A.M. Wadhwani and B.M. Joshi, Dictionary of Economic Plants in India, Indian Council of Agricultural Research, New Delhi (1983)
5. P.K. Warrier, V.P.K. Nambiar and C. Ramankutty, Indian Medicinal Plants, Vol. 1-4, (Arya Vaidya Sala, Kottakkal), Orient Longman Ltd., 160, Anna Salai, Madras (1993)
6. A. Husain, O.P. Virmani, S.P. Popli, L.N. Mishra, M.M. Gupta, G.N. Srivastava, Z. Abraham and A.K. Singh, Dictionary of Indian Medicinal Plants, Central Institute of Medicinal and Aromatic Plants, Lucknow (1992)
7. T. Tanaka, Tanaka's Cyclopedia of Edible Plants of the World, Keigaku Publishing Co. Tokyo, Japan (1976)
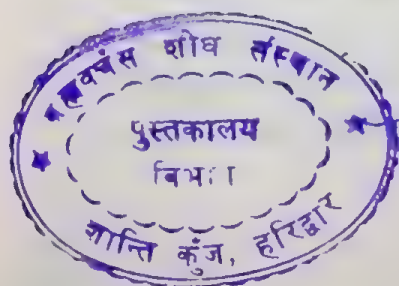
दहन क्रिया

कुछ लोगों का विचार है कि उत्तम पदार्थों को खाने की अपेक्षा अग्नि में जलाकर नष्ट कर देना उचित नहीं। महर्षि दयानन्द ने इस शंका का समाधान करते हुए लिखा है, "जो तुम पदार्थविद्या जानते तो कभी ऐसी बात न कहते, क्योंकि किसी द्रव्य का अभाव नहीं होता।"[१] यह उत्तर स्पष्टतया वैज्ञानिक है। जैसे अभाव से भाव की उत्पत्ति सम्भव नहीं वैसे ही भाव को भी अभाव में परिवर्तित नहीं किया जा सकता। "शास्त्र में लिखा है कि **'नासत आत्मलाभः, न सत आत्महानम्'**, अर्थात् जो नहीं है वह कभी हो नहीं सकता और जो है, वही आगे होता है। अस्ति से अस्ति होती है। नास्ति से किसी प्रकार नहीं हो सकती।"[२] ऋषि दयानन्द मानते हैं कि प्रकृति अनादि (जिसका आदि न हो अर्थात् बनाई न जा सके) तथा अनन्त (जिसका अन्त न हो, अर्थात् जिसे नष्ट न किया जा सके) है। इसका समर्थन आधुनिक विज्ञान ने द्रव्य अविनाश नियम (Law of Conservation of Mass) के द्वारा किया है। इस नियम के अनुसार "किसी भी रासायनिक प्रतिक्रिया में भाग लेनेवाले पदार्थों के भार का योग अपरिवर्तित रहता है।"[३]

अग्नि में आहुति देने से हानि तो कोई नहीं, लाभ अवश्य है। जब अग्नि में कोई वस्तु डाली जाती है तो अग्नि उसके स्थूलरूप को तोड़कर सूक्ष्म बना देती है। यजुर्वेद (१.८) में अग्नि को **धूरसि** कहकर इसी सत्य को प्रतिपादित किया गया है। **धूरसि** का अर्थ करते हुए महर्षि दयानन्द ने लिखा है, "भौतिक अग्नि सब पदार्थों का छेदन और अन्धकार का नाश करनेवाला है।"[४] "भौतिक अग्नि इसलिए है कि वह उन होम-द्रव्यों को परमाणुरूप करके वायु और जल के साथ मिलकर शुद्ध कर दे।" यह है भी दैनिक अनुभव की बात। एक मन दाल में एक ग्राम हींग का कुछ प्रभाव नहीं होता; परन्तु वही हींग भूनकर छौंक लगाने से सारी दाल को सुगन्धित कर देता है। मिर्च खाने से केवल खानेवाले व्यक्ति पर ही उसका प्रभाव पड़ता है, किन्तु इसे भली प्रकार पीसकर

उड़ा देने से आस-पास बैठे व्यक्ति खाँसने लगते हैं। उसी मिर्च को जलाने से बहुत लोगों पर उसकी तीक्ष्ण गन्ध का प्रभाव होता है, अतः अग्नि में डाल देने से पदार्थ हल्का होकर शीघ्र सारी वायु में फैल जाता है। उसकी भेदक शक्ति बढ़ जाती है। यह तथ्य ग्राह्म के गैसीय व्यापनशीलता के नियम (Grahm's Law of Diffusion of Gases) का आधार है। इस नियम के अनुसार "निश्चित ताप और दबाव पर गैसों की व्यापन गतियाँ उनके घनत्वों के वर्गमूल की विपरीत अनुपाती होती हैं।"[५] अतः जो गैस जितनी हल्की होगी, वह उतनी ही शीघ्र वायु में मिल सकेगी। ऐसा ही यजुर्वेद (६.१६) में कहा है—

स्वाहाकृतेऽऊर्ध्वनभसं मारुतं गच्छतम्। ।

"यज्ञ में स्वाहापूर्वक आहुति देने से वायु ऊपर आकाश में जावे।"

प्राचीन भारतीयों को अर्द्ध-शिक्षित, अर्द्ध-अशिक्षित माननेवालों को यह जानकर आश्चर्य होगा कि आधुनिक पाश्चात्य विज्ञान तथा अंग्रेजी पढ़े बिना भी ऋषि दयानन्द ने लिखा है, "अग्नि में डाला हुआ पदार्थ सूक्ष्म होके, फैलके, वायु के साथ दूर देश में जाकर दुर्गन्ध की निवृत्ति करता है।"[१] ऋषि आगे लिखते हैं, "उस सुगन्ध (किसर, कस्तूरी, पुष्प, इत्र आदि की सुगन्ध) का यह सामर्थ्य नहीं कि गृहस्थ-वायु को बाहर निकालकर शुद्ध वायु का प्रवेश करा सके; क्योंकि उसमें भेदकशक्ति नहीं है; और अग्नि ही का सामर्थ्य है कि उस वायु और दुर्गन्धयुक्त पदार्थों को छिन्न-भिन्न और हल्का करके बाहर निकालकर पवित्र वायु का प्रवेश करा देती है।"[१] "अतर और पुष्प आदि का सुगन्ध तो उसी दुर्गन्धयुक्त वायु में मिलकर रहता है, उसको छेदन करके बाहर नहीं निकाल सकता और न वह ऊपर चढ़ सकता है, क्योंकि उसमें हल्कापन नहीं होता। उसके उसी अवकाश में रहने से बाहर का शुद्ध वायु उस ठिकाने में जा भी नहीं सकता, क्योंकि खाली जगह के बिना दूसरे का प्रवेश नहीं हो सकता।"[६] अतः स्पष्ट है कि यदि ऋषियों ने वायुशुद्धि के लिए अग्निहोत्र को अपनाया है तो किसी अन्धविश्वास के कारण नहीं, अपितु वैज्ञानिक आधार पर।

अग्निहोत्र में किन-किन रासायनिक परिवर्तनों के द्वारा क्या-क्या पदार्थ उत्पन्न होते हैं—इसका निश्चय करना कठिन है, क्योंकि—

(क) यज्ञकुण्ड में सर्वदा तापांश समान नहीं रहता। तापांश भिन्नता के कारण एक ही हव्य-द्रव्य भिन्न-भिन्न पदार्थ बना सकता है।

(ख) यह भी सम्भव है कि रासायनिक क्रिया पूर्ण होने से पूर्व ही जो

पदार्थ बने हैं वे आपस में मिलकर कोई अन्य पदार्थ बना लें या उड़कर वायु में मिल जाएँ।

(ग) यह आवश्यक नहीं कि प्रत्येक ऑक्सीकरण सदा पूर्ण हो ही जाए, क्योंकि वायु की मात्रा न्यूनाधिक होती रहती है।

फिर भी यज्ञ के द्वारा उत्पन्न होनेवाले पदार्थों का अनुमान तो लगाया ही जा सकता है। हाँ, यह निश्चय करना कठिन है कि कितनी सामग्री डालने से कौन-सा पदार्थ कितनी मात्रा में उत्पन्न होगा।

अब हवन में डाले जानेवाले पदार्थों के जलने पर उत्पन्न होनेवाली गैसों पर विचार आरम्भ करते हैं—

कपूर

कपूर आसानी से जलता है, अतः यज्ञाग्नि कपूर जलाकर प्रज्वलित की जाती है। यह जलते समय धुआँ उत्पन्न करता है। इसका कुछ भाग बिना किसी रासायनिक परिवर्तन के उड़ जाता है जो वायु में मिलकर उत्तम सुगन्धि उत्पन्न करता है। वस्तुतः यह दुर्गन्ध को नष्ट नहीं कर पाता अपितु उसे अपनी सुगन्ध से मात्र छिपा लेता है। कपूर के शेष भाग का एक तैल बन जाता है जिसमें पाइनीन, डाइपैण्टीन, सीनिओल, युजिनॉल, सैफ्रोल और टर्पिनिऑल आदि होते हैं।

लकड़ी

अग्निहोत्र में जो द्रव्य डाले जाते हैं उनका लगभग ७५ प्रतिशत भाग लकड़ी होती है। इसका मुख्य प्रयोजन अग्नि प्रज्वलित रखना है, अतः आवश्यकता से अधिक समिधाएँ डालने का विशेष लाभ नहीं है। इसके जलने से लगभग ५००° सेल्सियस तापांश हो जाता है।

लकड़ी के मुख्य भाग सेलुलोस तथा लिग्नोसेलुलोस में लगभग ४७.६२ प्रतिशत हाइड्रोजन, २८.५७ प्रतिशत कार्बन तथा २३.८१ प्रतिशत ऑक्सीजन होती है। लकड़ी के जलने का अभिप्राय सेलूलोस तथा लिग्नोसेलुलोस का ऑक्सीकृत हो जाना है। फिर धीरे-धीरे जो हाइड्रोकार्बन बनती हैं, वे ४००-६००° सेल्सियस के बीच जल जाती हैं। सेलुलोस तथा लिग्नोसेलुलोस ऑक्सीजन के साथ मिलकर कार्बन डाइऑक्साइड तथा पानी बनाते हैं (द्रष्टव्य समीकरण १)§। पानी भाप बनकर उड़

---

§ सभी समीकरण परिशिष्ट ४ में दिए गए हैं।

जाता है तथा कार्बन डाइऑक्साइड वायु में मिल जाती है।

यदि वायु का प्रवेश कम हो तो कुछ कार्बन मोनोऑक्साइड गैस (समीकरण २) तथा कार्बन की धूल (समीकरण ३) भी बन सकती है, परन्तु यज्ञवेदी खुला स्थान होने से वायु भली प्रकार आती रहती है; अतः कार्बन मोनोऑक्साइड और कार्बन की धूल बनने की सम्भावना अतिन्यून है। कार्बन मोनोऑक्साइड बननी भी नहीं चाहिए, क्योंकि यह विषैली गैस है। हाँ, कार्बनधूलि हानिकारक नहीं है; अपितु यह वर्षा में सहायक है।

यज्ञकुण्ड की बनावट, समिधाओं की लम्बाई तथा उनके रखने की विधि, तापांश और वायु की ऐसी मात्रा निर्धारित कर देती है कि हवन के समय लकड़ी की आसवन-क्रिया हो जाने की पूरी सम्भावना है। आसवन-क्रिया के कारण अनेक पदार्थ पैदा होते हैं। फिर ये पदार्थ आपस में मिलकर कई अन्य पदार्थ बना लेते हैं। इस प्रकार समस्त क्रिया पेचीदा बन जाती है और उत्पन्न गैसों का सही अनुमान लगाना कठिन हो जाता है। यज्ञ में तो यह कार्य और भी कठिन है, क्योंकि वायु और गर्मी की मात्रा न्यूनाधिक होती रहने से परिस्थितियाँ भी निश्चित नहीं रह पातीं।

हाले और पामर[७] का विचार है कि आसवन-क्रिया के आरम्भ होते ही लकड़ी सूखना प्रारम्भ कर देती है। इस समय अधिक मात्रा में पानी तथा थोड़ा-सा ऐसीटिक ऐसिड और मैथेनॉल भी बनता है। उसके पश्चात् कई गैसें उत्पन्न होती रहती हैं।

पाश्चात्य वैज्ञानिक बुग[८] ने लकड़ी की आसवन-क्रिया के सम्बन्ध में महत्त्वपूर्ण कार्य किया है। वह इस प्रकार पैदा होनेवाली गैसों में एक सौ से भी अधिक पदार्थों की पहचान करने में सफल रहे हैं। उनके अनुसार इस क्रिया के कारण कई हाइड्रोकार्बन (मेथैन, बैञ्जीन आदि), ऐल्डिहाइड (फार्मेल्डीहाइड, ऐसीट ऐल्डिहाइड, फरफ्युरल, प्रोपिओन ऐल्डिहाइड आदि), कीटोन (ऐसीटोन, मेथिल एथिल कीटोन आदि), अम्ल (फार्मिक अम्ल, ऐसीटिक अम्ल, प्रोपिऑनिक अम्ल एवं नार्मल कैप्रोइक अम्ल आदि), एल्कोहॉल (मेथिल एल्कोहॉल, एथिल एल्कोहॉल आदि), फीनोल, कार्बन डाइऑक्साइड तथा पानी उत्पन्न होते हैं।

कौन-सा पदार्थ कितनी मात्रा में उत्पन्न होता है, यह लकड़ी की बनावट,

तापाश, दूसरे पदार्थों की विद्यमानता आदि पर निर्भर करता है। उत्पन्न द्रव्यों में एल्कोहॉल तथा कार्बनिक अम्ल भी हैं, अतः वे परस्पर मिलकर एस्टर बना लेंगे।

यह अनुमान लगाना कठिन है कि पूर्व उल्लिखित पदार्थ किन-किन रासायनिक परिवर्तनों के कारण बनते हैं, परन्तु क्लेसन के विचारानुसार आसवन-क्रिया के समय जो ऐसीटिक ऐसिड बनता है, वही टूटकर ऐसीटोन बना देता है तथा अन्य कीटोनज़ भी इसी प्रकार अपनी संगत के अम्लों से ही उत्पन्न होती हैं (समीकरण ४)। यहाँ हाइड्रोजन भी बनती है, किन्तु आसवन-क्रिया से उत्पन्न होनेवाले पदार्थों में क्लेसन व उनके सहयोगी हाइड्रोजन गैस प्राप्त नहीं कर सके थे; यद्यपि कुछ अन्य वैज्ञानिकों ने इस गैस को भी विद्यमान पाया है।[६]

यहाँ जो हाइड्रोकार्बन उत्पन्न हुई हैं, उनमें भी कई परिवर्तन होते रहते हैं। उदाहरणार्थ मेथैन से ऐसीटिलीन तथा हाइड्रोजन आदि बन सकते हैं (समीकरण ५)। यह हाइड्रोजन अन्य पदार्थों के साथ मिलकर नए पदार्थ बना सकती है तथा वायु में भी मिल सकती है।

रालयुक्त लकड़ी के जलने तथा आसवित हो जाने पर मुख्यतः फार्मेल्डीहाइड की उत्पत्ति होती है, किन्तु कुछ मात्रा में टर्पिनिऑल, टर्पिन, सीनिओल तथा अन्य उड़नशील पदार्थ भी बनते हैं।[१०]

लकड़ी के जलने पर बची राख की मात्रा कम-से-कम ०.२ प्रतिशत तथा अधिकाधिक ४ प्रतिशत होती है। साधारणतया राख १ प्रतिशत से कम ही बनती है। इसमें मुख्यतः कैल्सियम, पोटैशियम, मैग्नीशियम तथा थोड़ी मात्रा में ऐलुमिनियम, लोहा, मैंगनीज, सोडियम, फॉस्फोरस तथा गन्धक आदि होती हैं। पोटैशियम ऑक्साइड की विद्यमानता के कारण खाद के रूप में भी राख का प्रयोग किया जा सकता है। किसी समय राख को पोटैश-प्राप्ति का मुख्य साधन समझा जाता था।

घृत

कपूर द्वारा अग्नि प्रदीप्त कर समिधाओं पर घृत की आहुतियाँ देनी प्रारम्भ की जाती हैं। घी अग्नि को प्रज्वलित रखता है, परन्तु यदि इसका मात्र यही एक प्रयोजन होता तो किसी भी तेल या घी का प्रयोग किया जा सकता था; किन्तु शास्त्रों में गोघृत का विधान किया गया है। ऐसा क्यों? इसका कारण है कि शुद्ध गोघृत जलने पर कोई हानिकारक पदार्थ

उत्पन्न नहीं करता जबकि वनस्पति घी को जलाने का स्वास्थ्य पर सुखद प्रभाव नहीं पड़ता। इस प्रसङ्ग में डॉक्टर फुन्दनलाल अग्निहोत्री एम०डी० ने कुछ कार्य किया है। उन्होंने टी०बी० सेनेटोरियम जबलपुर में टी०बी० के रोगियों की यज्ञ के द्वारा चिकित्सा करने का प्रयास किया। उनके अनुभवानुसार गाय के घी से यज्ञ करने पर रोगी शीघ्र आरोग्य हुए। भैंस के घी से बहुत देर में लाभ हुआ, परन्तु वनस्पति घी के प्रयोग से रोग बढ़ना प्रारम्भ हो गया[११], अतः वैदिक शास्त्रों में यज्ञ के लिए गोघृत प्रयोग करने का विधान है।

घी ग्लिसरॉल तथा कार्बोक्सिलिक अम्लों के मेल से बना है। घी में पाये जानेवाले अम्लों में पामिटिक अम्ल, ओलीक अम्ल, मिरिस्टिक़ अम्ल, स्टिऐरिक अम्ल तथा लिनोलीइक अम्ल मुख्य हैं। वैसे इसमें थोड़ी मात्रा में ब्यूटिरिक अम्ल, लौरिक अम्ल, कैप्रिलिक अम्ल तथा कैप्रोइक अम्ल आदि भी होते हैं, अतः घृत के जलने से वही पदार्थ उत्पन्न होते हैं जो ग्लिसरॉल तथा उपर्युल्लिखित अम्लों की दहन क्रिया पर बनते हैं। इसलिए इन पदार्थों के ऑक्सीकरण आदि पर विचार करना उचित है—

ग्लिसरॉल

ग्लिसरॉल का जलना कुछ जलहरण तथा कुछ ऑक्सीकरण है। यह मान लेने से फार्मेल्डीहाइड की उत्पत्ति सम्भव हो जाती है; क्योंकि ग्लिसरॉल के परमाणु में से पानी निकलने पर ऐक्रोलीन बन जाती है जो ऑक्सीकृत हो जाने पर फॉर्मेल्डीहाइड बना देती है (समीकरण ६ तथा ७)।

ग्लिसरॉल के ऑक्सीकरण पर कई पदार्थ बनते हैं। डॉक्टर फीनार[१२] ग्लिसरॉल के ऑक्सीकरण पर ग्लिसर ऐल्डिहाइड, ग्लिसरिक अम्ल, टार्टरोनिक अम्ल तथा मीसोऑक्सैलिक अम्ल की उत्पत्ति मानते हैं (समीकरण ८)। इनके अतिरिक्त ग्लाइकोल ऐल्डिहाइड, ग्लाइऑक्सल तथा ऑक्सैलिक अम्ल भी बन सकते हैं (समीकरण ९)।

इस प्रकार कई पदार्थों के बनने की सम्भावना है। वास्तविक परिवर्तन तो वायु की मात्रा तथा तापांश आदि पर निर्भर करते हैं।

अम्ल

घृत में सन्तृप्त तथा असन्तृप्त दोनों प्रकार के अम्ल होते हैं। ऑक्सीकरण के समय सन्तृप्त वसीय अम्लों के परमाणु टूटकर कुछ ऐल्डिहाइड बना

देते हैं। फिर ये ऐल्डिहाइड ऑक्सीजन के साथ मिलकर अम्ल में परिवर्तित हो जाते हैं। इन अम्लों से हाइड्रोकार्बनों की उत्पत्ति होती है। उदाहरणार्थ घी में ३०-४० प्रतिशत ओलिक अम्ल होता है। इसके ऑक्सीकरण पर नार्मल नॉनिलिक ऐल्डिहाइड बन जाता है (समीकरण १०)। नार्मल नॉनिलिक ऐल्डिहाइड से नानेनोइक अम्ल एवं ओक्टेन (समीकरण ११) और ओलिक अम्ल से उत्पन्न दूसरे पदार्थ से नार्मल ऑक्टिलिक ऐल्डिहाइड, आक्टेनोइन अम्ल एवं हेप्टेन (समीकरण १२) बनती हैं, परन्तु यह तो केवल एक सम्भावना है। इसके अतिरिक्त और भी कई प्रकार के पदार्थ उत्पन्न होते हैं। इसी प्रकार लिनोलीइक अम्ल से कैप्रोनिक ऐल्डिहाइड तथा वैलेरिक ऐल्डिहाइड बनते हैं।

घृत में विद्यमान सन्तृप्त वसीय अम्ल भाप के साथ मिल साधारण छोटे अम्ल उत्पन्न करता है। फिर यह अम्ल हाइड्रोकार्बन बना सकते हैं। उदाहरणार्थ ब्यूटिरिक अम्ल सर्वप्रथम मेथैन और β-हाइड्रोक्सी-प्रोपिऑनिक अम्ल बनाएगा (समीकरण १३ तथा १४)। इसी प्रकार अनेक पदार्थों की उत्पत्ति सम्भव है (समीकरण १५)। यदि अम्लों की दहन-क्रिया पूर्ण हो जाए तो कार्बन डाइऑक्साइड तथा पानी बन जाएगा।

यह आवश्यक नहीं कि यज्ञ के समय उपर्युल्लिखित सभी क्रियाएँ पूर्ण हों, क्योंकि कई बार पदार्थ ऑक्सीकरण से पूर्व ही वायु में मिल जाता है। उदाहरणार्थ अकेले घी को अग्नि में जलाइए। सुगन्धि उत्पन्न होगी, अतः स्पष्ट है कि यहाँ ऑक्सीकरण पूर्ण नहीं हुआ अन्यथा गन्धरहित कार्बन डाइऑक्साइड गैस बन जाती। यज्ञ के समय पूर्व-उल्लिखित सभी या उनमें से कुछ पदार्थ बनते हैं।

घी के जलने से जो सुगन्धि उत्पन्न होती है, उसका कारण कैप्रोनिक ऐल्डिहाइड, नार्मल औक्टीलिक ऐल्डिहाइड, नार्मल नॉनिलिक ऐल्डिहाइड, वैलेरिक ऐल्डिहाइड तथा कई अन्य उड़नशील ऐल्डिहाइड व वाष्पशील वसीय अम्ल होते हैं। ये सभी वायु में मिल जाते हैं, जिससे सर्वत्र सुगन्धि फ़ैल जाती है।

घी के जो कण बिना जले ही वायु में उड़ जाते हैं, वे अतिसूक्ष्म होते हैं। ये अग्निहोत्र से उत्पन्न होनेवाली गैसों को स्वयं में लीन करके वायुमण्डल को अधिक समय तक पवित्र रखते हैं। घृत के ये कण वर्षा के लिए धूलिकणों का कार्य भी करते हैं।

घी की आहुति देने से जो पदार्थ उत्पन्न होते हैं उनमें हाइड्रोकार्बनों की मात्रा पर्याप्त है। ये हाइड्रोकार्बन यज्ञकुण्ड के तापांश (४५०-५५०° सेल्सियस) पर ऑक्सीजन से मिलकर कुछ अन्य पदार्थ बना लेते हैं। उदाहरणार्थ—व्हीलर तथा ब्लेयर[१३] के अनुसार मेथैन ऑक्सीकरण पर मेथिल एल्कोहॉल तथा फार्मेल्डीहाइड आदि बना देती है (समीकरण १६)। क्योंकि ये सभी पदार्थ वायु में मिलते रहते हैं, इसलिए फार्मेल्डीहाइड के ऑक्सीकृत हो जाने की बहुत कम सम्भावना है।

इसी प्रकार एथेन फार्मेल्डीहाइड, ऐसीट ऐल्डिहाइड, मेथिल एल्को-हॉल, एथिल एल्कोहॉल, फार्मिक ऐसिड आदि अनेक पदार्थ बना देती है।[१४,१५]

हव्य सामग्री

जब अग्नि अच्छी प्रकार प्रज्वलित हो जाए तो सामग्री की आहुतियाँ दी जाती हैं। सामग्री के द्रव्यों के जलने पर बननेवाले पदार्थों के विषय में अभी अनुसन्धान की आवश्यकता है।

कपूरकचरी, नागरमोथा, जटामांसी, सफेद चन्दन का चूरा तथा अगर आदि लकड़ी की भाँति स्वयं जलकर शेष क्रियाओं के पूर्ण होने के लिए गर्मी भी उत्पन्न करते हैं।

तिल ग्लिसरॉल तथा इलेइडिक अम्ल व स्टिऐरिक अम्ल के मेल से बना है। इसी प्रकार के कुछ वसीय अम्ल चिरौंजी, नारियल, लौंग, जौ, गेहूँ तथा चावल आदि में भी विद्यमान हैं, अतः इनके जलने से जहाँ अन्य पदार्थ उत्पन्न होते हैं; वहाँ पूर्व चर्चित वैसे पदार्थ भी बनते हैं, जिनकी उत्पत्ति ग्लिसरॉल तथा वसीय अम्ल के ऑक्सीकरण से सम्भव है।

यज्ञ-सामग्री की वस्तुओं में कार्बोहाइड्रेट भी विद्यमान है। शर्करा तथा स्टार्च इसी कार्बोहाइड्रेट के दो प्रकार हैं। चावल, गेहूँ, जौ, उड़द, कपूरकचरी, तगर आदि में स्टार्च होता है। ऋषि दयानन्द ने यज्ञ में स्टार्चवाले द्रव्यों के भी डालने का विधान किया है। शर्करावाले द्रव्यों में खाँड मुख्य है। यह यज्ञ-सामग्री में पर्याप्त मात्रा में डाली जाती है। इसके अतिरिक्त शहद, दुग्ध, तगर, गेहूँ, लौंग, दाख, छुहारे, नरकचूर आदि में भी पर्याप्त मात्रा में शर्करा होती है। इनके जलने से स्वास्थ्य के लिए हितकर गैसें उत्पन्न होती हैं। फ्रांस के विज्ञान के एक भूतपूर्व अध्यापक

टिलवर्ट का विचार है कि खाँड के तेजी से जलने पर (अग्निहोत्र में ऐसा ही होता है) फार्मेल्डीहाइड की उत्पत्ति होती है। यह गैस कृमियों का नाश करके वायु को मनुष्योपयोगी बना देती है।

खाँड को वैज्ञानिक भाषा में सुक्रोस कहते हैं। २१०° सेल्सियस पर गर्म करने से इसका पानी उड़ जाता है और कार्मल नामक एक पदार्थ वन जाता है। अधिक गर्म करने पर कार्बन डाइऑक्साइड, कार्बन मोनोऑक्साइड, मेथैन, एथिलीन, ऐसीटिलीन, ऐसीटोन, फार्मिक अम्ल, एथानॉल, ऐक्रोलीन आदि उत्पन्न होते हैं। ऑक्सीकरण पर खाँड ऑक्सैलिक अम्ल तथा सैकेरिक अम्ल को जन्म देती है।

मीठे फलों और शहद में ग्लूकोस तथा फ्रक्टोज आदि होते हैं। फलों में इनकी उत्पत्ति सम्भवतः खाँड के जलीय विच्छेदन से होती है। इनके ऑक्सीकरण पर भिन्न-भिन्न पदार्थ बनते हैं। उदाहरणार्थ—ग्लूकोस के ऑक्सीकरण पर ग्लूकोनिक अम्ल, सैकेरिक अम्ल और टार्टरोनिक अम्ल बनते हैं (समीकरण १७)। इसी प्रकार अन्य पदार्थ भी ऑक्सीकृत होते रहते हैं। सभी प्रकार के दूध में लैक्टोस होता है। गोदुग्ध में इसकी मात्रा ४-६ प्रतिशत है। इसके ऑक्सीकरण पर सैकेरिक अम्ल भी बनता है।

यज्ञ के द्वारा वायु सुगन्धित हो जाती है; क्योंकि अग्निहोत्र में कस्तूरी, केसर, अगर, श्वेत चन्दन, जायफल, जावित्री, लौंग, कुलञ्जन, बालछड़, इलायची और कपूर आदि भी डाले जाते हैं। ये द्रव्य कुछ वाष्पशील सौरभिक पदार्थ उत्पन्न करती हैं। वस्तुतः पाइनीन, बोर्निओल, सिट्रल, सीनिऑल, टर्पिनिऑल, सैफ्रोल, थाइमोल, कार्वा- क्रॉल, सिनेमिक अम्ल, सैलिसिलिक अम्ल तथा अगर, देवदार, तिल, लौंग और सन्दल के तेल आदि की उत्पत्ति सम्भव दीख पड़ती है।

कुलञ्जन के आसवन पर जो तेल बनता है उसमें ४८ प्रतिशत मेथिल सिनेमेट, २०-३० प्रतिशत सीनिऑल, कपूर तथा सम्भवतया पाइनीन भी होते हैं।[१७क]

दालचीनी से जो तेल निकलता है उसमें मुख्यतः सिनेमिक ऐल्डिहाइड तथा कुछ युजिनॉल, लिनेलूल तथा पाइनीन आदि मिलते हैं।[१७ख] तेजपत्र आसवन पर सिनेमिक ऐल्डिहाइड, बेन्ज़िल-ऐल्डिहाइड, सैफ्रोल तथा युजिनॉल बनाता है।

लौंग, भाप के द्वारा होनेवाली आसवन-क्रिया पर एक तेल देती है, जिसमें ३४-६५ प्रतिशत तक फीनोल, सैस्क्वीटर्पीन तथा थोड़ी मात्रा में कीटोन, एल्कोहॉल और एस्टर होते हैं। लौंग के तेल में फरफ्यूरल तथा वैनीलिन भी होता है।

जायफल ३०-४० प्रतिशत वसा तथा ५-२५ प्रतिशत वाष्पशील तेल देता है। पावर तथा साल्वे के विचारानुसार इस तेल में ८० प्रतिशत पाइनीन तथा कैम्फीन, ८ प्रतिशत डाइपैण्टीन, ६ प्रतिशत एल्कोहॉल, ४ प्रतिशत माइरिस्टिसिन, ०.६ प्रतिशत सैफ्रोल तथा ०.२ प्रतिशत युजिनॉल होते हैं।[१७घ]

आर० एन० चोपड़ा ने लिखा है कि प्रायः चन्दन की लकड़ी को खूब बारीक रगड़कर भाप के साथ गर्म करने पर इसमें से तेल निकलता है जिस तेल में लगभग ६० प्रतिशत सेण्टालोल होता है।[१७ङ] यज्ञ में भी चन्दन का चूरा ही प्रयोग किया जाता है। अग्निहोत्र के समय भाप भी काफी बनती रहती है, अतः इस तेल का बनना सम्भव है। लकड़ी के टुकड़ों के स्थान पर चूरे का प्रयोग किया जाना विज्ञान-संगत है। जे०एफ० दस्तूर के अनुसार "चन्दन का यह सुगन्धित तेल अपवित्रता-नाशक, कीड़ों को परे भगाने तथा मारनेवाला है।"[१८]

देवदार के तेल में पाइनीन तथा हाइड्रोकार्बन होते हैं। यह तेल कृमिरोधक है। बड़ी इलायची सीनिओल तथा टर्पिनिऑल और बालछड़ बोर्निओल को उत्पन्न करती है।

जो पदार्थ इस प्रकार उत्पन्न होते हैं वे २००-४००° सेल्सियस तापांश पर उड़ जाते हैं तथा वायु में मिलकर सुगन्धि पैदा करते हैं। यज्ञ के समय जो धुआँ और भाप बनता है वह इन पदार्थों को बहुत दूर तक फैला देते हैं। इस प्रकार इन पदार्थों को वायु में मिलने में सुविधा हो जाती है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि जलाने से किसी वस्तु का नाश नहीं होता, केवल रूप बदल जाता है। आहुति देने के पश्चात् भी पदार्थों का उपयोगी भाग ज्यों-का-त्यों बना रहता है, वे पदार्थ केवल सूक्ष्म हो जाते हैं। इनका सूक्ष्म आकार इन्हें वायु में मिलने एवं फैलने में सुविधा प्रदान करता है। उड़नेवाले तेलों के परमाणुओं का व्यास लगभग १×१०^{-२} से १×१०^{-७} मिलीमीटर होता है। ये परमाणु श्वास के द्वारा रोगी के फेफड़ों

में पहुँचकर क्षत को भर देते हैं।

इन पृष्ठों में कुछ रासायनिक परिवर्तनों की चर्चा की गई है, पर ये परिवर्तन तभी फलदायक हो सकेंगे जब घी और सामग्री थोड़ी-थोड़ी मात्रा में थोड़ी-थोड़ी देर के पश्चात् प्रज्वलित अग्नि पर डाली जाएँगी। यदि सभी द्रव्यों की आहुति एकदम, बिना किसी विधि के दे दी गई तो अग्नि भी बुझ जाएगी तथा क्रियाएँ पूर्ण न होने के कारण वाञ्छित गैसें उत्पन्न न हो सकेंगी। यदि सामग्री देर में डाली जाए तो गर्मी का उचित लाभ न उठाया जा सकेगा, अतः बिना विधि के किया गया अवैज्ञानिक कार्य यज्ञ नहीं कहलाएगा। ऋषि दयानन्द ने पूना में सातवें दिन का व्याख्यान देते हुए ठीक ही कहा था, "योग्य रीति से यथाविधि होम करना चाहिए। एकदम मनभर घी जला दिया वा चम्मच-चम्मच करके मनभर घृत को वर्ष भर जलाते रहे तो भी होम नहीं होगा।"[१६] महर्षि के इन वचनों के वैज्ञानिक महत्त्व से इन्कार नहीं किया जा सकता।

इस असुविधा को दूर करने के लिए प्राचीन ऋषियों ने आहुति का परिमाण तथा इसके डालने का समय निश्चित किया है। ऋषिवर दयानन्द[२०] ने भी आहुति के सामान्य परिमाण के विषय में लिखा है, "कम-से-कम छह मासाभर घृत व अन्य मोहनभोगादि जो कुछ सामग्री हो, अधिक-से-अधिक छटाँकभर की आहुति देवें।" यह परिमाण साधारण यज्ञों के लिए है। बड़े यज्ञों में अधिक आहुति देने का विधान है। देव दयानन्द आगे लिखते हैं—"छह-छह मासे घृतादि एक-एक आहुति का परिमाण न्यून-से-न्यून चाहिए और जो इससे अधिक करे तो बहुत अच्छा।" प्रत्येक आहुति देने से पूर्व उस आहुति के लिए निश्चित किए मन्त्र का उच्चारण करने का विधान है। इससे हवन-सामग्री अर्पित करने का समय व्यवस्थित हो जाता है तथा क्रिया सुविधापूर्वक चलती रहती है। साथ ही वेद की रक्षा तथा समय का सदुपयोग भी हो जाता है। मन्त्रों से यज्ञ के प्रत्येक अङ्ग का साथ-साथ ज्ञान होता जाता है; क्योंकि उस क्रिया से सम्बन्धित मन्त्र ही तत्-तत् क्रिया के अवसर पर उच्चारित किया जाता है। यही मन्त्रों का विनियोग कहलाता है। सारा कार्य बोझ न बनकर पवित्र, धार्मिक कृत्य बन जाता है। इसी धार्मिक भावना के कारण यज्ञ के समय कितने ही नर-नारी केवल दर्शक के रूप में बैठे रहते हैं। उन्हें भी हवनीय गैसों से युक्त सुगन्धित वायु में सांस लेकर निज स्वास्थ्य की रक्षा करने का अवसर प्राप्त होता रहता है।

प्रकाश संश्लेषण

यज्ञ में सूर्य की किरणों का बहुत महत्त्व है। महर्षि दयानन्द[१] ने लिखा है, "सूर्योदय के पश्चात् और सूर्यास्त के पूर्व अग्निहोत्र करने का समय है।" वैसे भी यज्ञवेदी खुला स्थान होता है, जहाँ प्रकाश सुविधा से पहुँच सके। सूर्य के प्रकाश को इतना महत्त्व देने का कारण यह है कि यज्ञ के समय उत्पन्न हुए पदार्थों में सूर्य के प्रकाश की विद्यमानता में कई प्रकार के रासायनिक परिवर्तन होते रहते हैं। कुछ ऐल्डिहाइड और एल्कोहॉल ऑक्सीकृत हो जाते हैं। हाइड्रोकार्बन तथा फीनोल का बहुलीकरण हो जाना सम्भव है। कई हाइड्रोकार्बनों का ऑक्सीकरण भी हो जाता है। पराबैंगनी प्रकाश में कुछ कार्बन डाइऑक्साइड पानी के साथ मिलकर फार्मेल्डीहाइड भी बना लेती है (समीकरण १८)।

फार्मेल्डीहाइड अन्य कई परिवर्तनों के द्वारा भी बनता रहता है। उदाहरणार्थ—एसीटिक अम्ल, ग्लिसरॉल, ऐसीटोन आदि भी हवन से उत्पन्न होते हैं। धर और आत्माराम[२१] वायु और सूर्य के प्रकाश की विद्यमानता में इनका फार्मेल्डीहाइड में बदल जाना सम्भव मानते हैं (समीकरण १९, २०)। पाइरूविक अम्ल, ऑक्सैलिक अम्ल, ग्लूकोस, फॉर्मिक अम्ल, प्रोपिऑनिक अम्ल, खाँड, स्टार्च, स्टिऐरिक अम्ल भी सूर्य के प्रकाश में थोड़ी मात्रा में फार्मेल्डीहाइड बनाते हैं। सम्भवतः ये पदार्थ सर्वप्रथम ऑक्सीकरण के कारण फार्मेल्डीहाइड में बदल जाते हैं।

सूर्य के प्रकाश का सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण कार्य प्रकाश संश्लेषण है। हरे पौधों में क्लोरोफिल होता है। पौधे धूप की विद्यमानता में क्लोरोफिल की सहायता से कार्बन डाइऑक्साइड को कार्बोहाइड्रेट में बदल देते हैं। इस क्रिया को प्रकाश संश्लेषण कहते हैं।

क्लोरोफिल के बिना यह परिवर्तन नहीं हो सकता। भारतीय शास्त्रकारों ने भी यज्ञवेदी के चहुँ ओर हरी लताएँ तथा पौधे लगाने का विधान किया है। इससे जहाँ स्थान की शोभा और रमणीयता बढ़ती है, वहीं प्रकाश संश्लेषण भी होता रहता है।

प्रकाश-संश्लेषण केवल धूप में ही सम्भव है। यही कारण है कि दिन की अपेक्षा रात्रि में वायु में कार्बन डाइऑक्साइड की मात्रा १२ प्रतिशत बढ़ जाती है। यदि कार्बन डाइऑक्साइड की मात्रा वायु में ०.६ प्रतिशत हो तो पता नहीं चलता। १.५ प्रतिशत कार्बन डाइऑक्साइड से सिरपीड़ा

आदि होती है। वैसे सिरपीड़ा एवं मूर्च्छा आदि का कारण कार्बन डाइऑक्साइड नहीं अपितु ऑक्सीजन का अभाव होता है। यदि ७.५ प्रतिशत कार्बन डाइऑक्साइड हो तो वायु विषाक्त बन जाती है, अतः यज्ञ के लिए सूर्योदय के पश्चात् तथा सूर्यास्त से पूर्व का समय निश्चित करना वैज्ञानिक महत्त्व रखता है।

प्रकाश-संश्लेषण के लिए पानी की विद्यमानता भी आवश्यक है। यज्ञ के समय पानी कई रासायनिक परिवर्तनों से बनता रहता है। हव्य पदार्थों में भी पर्याप्त मात्रा में पानी होता है। यही जल भाप बनकर उड़ जाता है तथा वायु में रहता है। इस प्रकार अग्निहोत्र प्रकाश-संश्लेषण की सारी शर्तें पूरी करता है।

यज्ञ के द्वारा उत्पन्न हुई कार्बन डाइऑक्साइड हानि नहीं पहुँचाती, अपितु पौधों के लिए भोजन देती है। पौधे कार्बन डाइऑक्साइड और ऑक्सीजन के बिना जीवित नहीं रह सकते। वनस्पति जगत् प्रतिवर्ष ६०×१०^{१२} किलोग्राम कार्बन डाइऑक्साइड को निज भोजन में परिवर्तित कर रहा है। भूमि पर पड़नेवाली सूर्य की शक्ति का १×१०^{-४} भाग केवल इसी क्रिया में व्यय हो रहा है, अतः कार्बन डाइऑक्साइड की मात्रा में किञ्चित् वृद्धि से अधिक प्रकाश-संश्लेषण होगा जिसका फसल पर सुखद प्रभाव पड़ेगा। मैक्समोव इस निष्कर्ष पर पहुँचे हैं कि "खाद की गर्म तह से आच्छादित पौधों की तेज वृद्धि केवल इस प्रकार उत्पन्न अधिक तापांश के कारण ही नहीं अपितु कार्बन डाइऑक्साइड की अधिक मात्रा के कारण भी होती है।"[२२] इसका प्रमाण एक वैज्ञानिक ने सन् १६०४ में कार्बन डाइऑक्साइड की मात्रा बढ़ाकर अधिक फसल उत्पन्न करके दिया है।

ऐसा समझा जाता है कि चूने की भट्ठियों में काम करनेवालों को कार्बन डाइऑक्साइड की विद्यमानता के कारण फेफड़ों का क्षयरोग नहीं होता। इसी आधार पर एक फ्रेंच डॉक्टर ने क्षयरोग की एक चिकित्सा निकाली थी। विधि इस प्रकार है कि कार्बन डाइऑक्साइड से युक्त वायु में कैल्सियम धूल पर शुष्क गर्मी का प्रयोग किया जाए। फिर इस वायु में रोगी लम्बे-लम्बे साँस ले। यह प्रयोग इस डॉक्टर के द्वारा कई रोगियों पर एक दो दिन में बारह-बारह बार किया। ऐसा करने से क्षय के चिह्न दूर होने शुरु हो गए तथा रोगियों का भार भी बढ़ने लगा।[२३]

सूर्य का प्रकाश मनुष्य के लिए वैसे भी लाभदायक है। इससे शरीर में विटामिन डी बनता है, जिससे हड्डियाँ पुष्ट होती हैं। उदय और अस्त होनेवाले सूर्य की किरणें तो और भी अधिक गुणकारी होती हैं। अथर्ववेद (२.३२.१) में कहा गया है—

उद्यन्नादित्यः क्रिमीन्हन्तु निम्रोचन्हन्तु रश्मिभिः।
ये अन्तः क्रिमयो गवि॥

"उदय होता हुआ और अस्त होनेवाला सूर्य अपनी किरणों से भूमि और शरीर में रहनेवाले रोगजनक कीटों का नाश करता है।"

सूर्य का प्रकाश कृमिनाशक है। राबर्ट कौच ने सन् १८६० में अनेक प्रयोगों द्वारा यह सिद्ध किया कि क्षयरोग (फेफड़ों के क्षयरोग को छोड़कर) के कीटाणु इस प्रकाश में दस मिनट से अधिक समय तक जीवित नहीं रह सकते। इसीलिए क्षयरोग से ग्रस्त व्यक्ति को धूप सेकनी चाहिए। सम्भवतः जनसाधारण इसको यह कहकर मान्यता प्रदान किया करता है कि अँधेरे में क्षयरोग फूलता-फलता है तथा प्रकाश में यह दुम दबाकर भाग जाता है, अतः यज्ञ के लिए सूर्योदय के पश्चात् तथा सूर्यास्त से पूर्व का समय ही ठीक है।

द्रष्टव्य :

१. ऋषि दयानन्द सरस्वती, सत्यार्थप्रकाश, तृतीय समुल्लास
   तुलना : ऋषि दयानन्द सरस्वती के पूना प्रवचन (व्याख्यान सात)
२. स्वामी दयानन्द सरस्वती, मौलवी मुहम्मद कासम और पादरी स्काट आदि के मध्य चाँदापुर मेले में २०मार्च १८७७ को हुई चर्चा "सत्यधर्म विचार" शीर्षक से प्रकाशित पुस्तिका
३. "In all chemical and physical changes, the total mass of the system remains constant." or "Matter can neither be created nor destroyed by any physical or chemical means though it may change its form."
४. ऋषि दयानन्द सरस्वती, यजुर्वेदभाष्य, (१.८)
५. "At certain temperature and pressure, the rates of diffusion of gases are inversely proportional to the square roots of their densities."

६. ऋषि दयानन्द सरस्वती, ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका, वेदविषयविचार

७. Hawley and Palmer, U.S. Department Agr. Bull., 129 (1914)

८. G. Bugge, 'Industrie der Helzdistillations Produkta.' Theeder Steinkoff, Dresden & Leipzig (1927)

९. Klason quoted in Henser, Cellulose Chemistry

१०. Satya Prakash, Agnihotra, The Sarvadeshik Arya Pratinidhi Sabha, Delhi (1937), pp. 130-31

११. डॉक्टर फुन्दनलाल 'अग्निहोत्री', हवन-यज्ञ द्वारा क्षयरोग की चिकित्सा (१९५६)

१२. I.L. Finer, Organic Chemistry, Longman, London (1973)

१३. T.S. Wheeler and E.W. Blair, J. Soc. Chem. Ind., 42, 491-7T (1923)

१४. Bone and Andrew, J. Chem. Soc., 87, 1232 (1905)

१५. G. Eglff and R.E.Schaad, Chem. Revs., 9, 91-141 (1929)

१६. Louise Kelley, Organic Chemistry, Mc.Graw Hill, N.Y. (1957)

१७. R.N. Chopra, I.C. Chopra, K.L. Handa and L.D. Kapur, Indigenous Drugs of India, Dhur & Sons, Calcutta (1958). (क) P. 275, (ख) p. 126, (ग) p. 172, (घ) p. 202, (ङ) 243, 628

१८. J.F. Dastur, Medicinal Plants of India and Pakistan, D.B. Taraporewala & Co. Ltd., Bombay (1977)

१९. ऋषि दयानन्द सरस्वती, पूना-प्रवचन, व्याख्यान सात

२०. ऋषि दयानन्द सरस्वती, संस्कारविधि, सामान्यप्रकरण

२१. N.R. Dhar and Atma Ram, J. Ind. Chem. Soc., 10, 161, 287 (1933)

२२. N. A. Maximov, Plant Physiology, Mc Graw Hill, New York (1938)

२३. देवयज्ञ प्रदीपिका में "हिन्दू मैसेज" के "मैडिकल सप्लीमैण्ट" को उद्धृत किया है ।

७

पर्यावरण एवं नैरोग्य

आज जल, वायु, अन्न, मिट्टी.....कुछ भी शुद्धं नहीं है। प्रदूषण इतना बढ़ गया है कि अमरीका, कनाडा जैसे देशों में तेजाबी वर्षा एक प्रमुख समस्या है। समस्त संसार पर्यावरण-प्रदूषण से चिन्तित है। अपने कर्त्तव्य का सुचारू रूप से पालन करती हुई प्रकृति वायु के शोधन में अवश्य महत्त्वपूर्ण योगदान करती रही है अन्यथा अब तक वायुमण्डल इतना प्रदूषित हो गया होता कि श्वास लेना दूभर हो जाता। अग्निहोत्र उस महान् प्रभु द्वारा रचाए गए इस महान् प्राकृतिक यज्ञ का ही एक रूप है। इसके द्वारा वायु की दुर्गन्ध नष्ट होकर सुगन्ध फैलती है। वेद यज्ञ को वायु की शुद्धि का हेतु मानता है—

वसोः पवित्रमसि शतधारं वसोः पवित्रमसि सहस्रधारम्।

—यजुः० १।३

"यज्ञ असंख्यात संसार एवं अनेक प्रकार के ब्रह्माण्ड को धारण करनेवाला तथा शुद्धि करनेवाला कर्म है।"[१]

इसलिए शास्त्रकारों ने प्रतिदिन यज्ञ करने का विधान किया है। मनु (२।१०३) ने तो यज्ञ न करनेवालों को दण्ड का भागी माना है। यजुर्वेद (१।२) भी यज्ञ का त्याग न करने का स्पष्ट आदेश देता है—

वसोः पवित्रमसि द्यौरसि पृथिव्यसि मातरिश्वनो घर्मोऽसि विश्वधाऽअसि। परमेण धाम्ना दृंहस्व मा ह्वार्मा ते यज्ञपतिर्ह्वार्षीत्॥

इस मन्त्र का अर्थ करते हुए ऋषि दयानन्द लिखते हैं—"हे विद्यायुक्त मनुष्य ! तू जो यज्ञशुद्धि का हेतु है, जो विज्ञान के प्रकाश का हेतु और सूर्य की किरणों में स्थिर होनेवाला है, जो वायु के साथ देश-देशान्तर में फैलनेवाला है, जो वायु को शुद्ध करनेवाला है, जो संसार का धारण करनेवाला है तथा जो उत्तम स्थान से सुख का बढ़ानेवाला है, इस यज्ञ

का मत त्याग कर । तेरे यज्ञ की रक्षा करनेवाला यजमान भी उसको न त्यागे ।"[१]

ऋषि दयानन्द ने यज्ञ को वायु-शुद्धि का सर्वोत्तम साधन माना है । इसीलिए यजुर्वेदभाषाभाष्य में ऋषि लिखते हैं, "जैसी यज्ञ के अनुष्ठान से वायु और वृष्टिजल की उत्तम शुद्धि और पुष्टि होती है, वैसी दूसरे उपाय से कभी नहीं हो सकती ।"[२]

ऋषि दयानन्द सरस्वती ने २० जुलाई सन् १८७५ ई० को पूना में सातवें प्रवचन में फरमाया था—

"पुष्टि, वर्धन, सुगन्ध-प्रसार और नैरोग्य ये चार उपयोग होम अर्थात् हवन करने से होते हैं ।"

"सुवृष्टि और वायु-शुद्धि होम-हवनादि से होती है, इसलिए होम करना चाहिए ।"

"पहले आर्य लोगों का ऐसा सामाजिक नियम था कि प्रत्येक पुरुष प्रातःकाल स्नान कर बारह आहुति देता था, क्योंकि प्रातःकाल में जो मल-मूत्रादिकों की दुर्गन्ध उत्पन्न होती थी, वह इस प्रातःकाल के हवन से दूर होती थी । इसी तरह सायंकाल में हवन करने से दिनभर की जमी हुई जो दुर्गन्धि उसका नाश होकर रातभर वायु निर्मल और शुद्ध चलती थी ।"

"इन दिनों होम के न्यून होने से बारम्बार वायु बिगड़ रही है, सदा विलक्षण रोग उत्पन्न होते जाते हैं ।"

यज्ञ न केवल वायु की दुर्गन्ध को नष्ट करता है, अपितु इसे शुद्ध कर रोगों से भी रक्षा करता है । महर्षि दयानन्द[३] का यह विचार पूर्णतया सत्य है कि "दुर्गन्धियुक्त वायु और जल से रोग, रोग से प्राणियों को दुःख और सुगन्धित वायु तथा जल से आरोग्य और रोग के नष्ट होने से सुख प्राप्त होता है ।" ऋषि आगे लिखते हैं, "जब तक इस होम करने का प्रचार रहा, तब तक आर्यावर्त्त देश रोगों से रहित और सुखों से पूरित था, अब भी प्रचार हो तो वैसा ही हो जाए ।" अतः समझना चाहिए कि प्राचीन आर्य लोग अग्निहोत्र के द्वारा वायुशुद्धि तथा आरोग्य प्राप्त किया करते थे ।

वैसे तो भारत में प्रत्येक कार्य करने से पूर्व हवन किया जाता है, किन्तु विशेषरूप से ऋतु-परिवर्तन (ऋतु-सन्धि) के समय बृहद् यज्ञों का

प्राचीनकाल से ही प्रचलन रहा है। इसका कारण यह है कि ऋतु-सन्धि अनेक रोग उत्पन्न करती है। इन व्याधियों का निवारण भैषज्य यज्ञों के द्वारा होता है। शतपथब्राह्मण में इसकी पुष्टि की गई है—

भैषज्ययज्ञा वा एते ।

ऋतुसन्धिषु व्याधिर्जायते तस्मादृतुसन्धिषु प्रयुज्यन्ते ॥

"ये भैषज्य यज्ञ कहलाते हैं। ऋतुओं की सन्धि में व्याधियाँ उत्पन्न होती है; इसलिए इनका प्रयोग ऋतु-सन्धि में होता है।"[४]

भारतीय घरों में नया अन्न अग्नि में अर्पित किये बिना प्रयोग में नहीं लाया जाता था। प्रत्येक ऋतु में उस ऋतु के पदार्थों द्वारा यज्ञ करने की प्रथा रही है। सम्भवतः विशेष मौसम में उत्पन्न होनेवाले पदार्थ उस समय के रोगों को दूर करने में अधिक उपयोगी होंगे। इस प्रकार के यज्ञों की चर्चा भावप्रकाश (कृतान्न वर्ग १७८) में भी की गई है—

अर्द्धपक्वैः शमीधान्यैस्तृणभृष्टैश्च होलकः ।

होलकोऽल्पानिलो मेदः कफदोषश्रमापहः ॥

भवेदथो होलको यस्य स तत्तद् गुणो भवेत् ।

"तिनकों की अग्नि में भूने हुए अधपके शमी धान्य (फलीवाले अन्न) को 'होलक' या 'होला' कहते हैं। होलक स्वल्प वात है और (चर्बी), कफ तथा थकान के दोषों का शमन करता है। जिस-जिस अन्न का होला होता है, उसमें उसी-उसी अन्न का गुण होता है।"

अतः हवन के द्वारा रोगों का नाश किया जाना सम्भव है। ये रोग किस प्रकार उत्पन्न होते हैं तथा अग्निहोत्र से कैसे नष्ट हो सकते हैं, इस प्रश्न पर विचार करना आवश्यक है।

आधुनिक पाश्चात्य विज्ञान का मत है कि व्याधियों के जन्मदाता रोगाणु (रोगकीट, कृमि) हैं। रोगाणुवाद के लिए किसी व्यक्तिविशेष को श्रेय नहीं दिया जा सकता। यूँ तो आरम्भिक कार्य पाश्चर के द्वारा किया गया है, परन्तु इस क्षेत्र में राबर्ट कौच, स्मिथ, किलबोर्न आदि का योग भी महत्त्वपूर्ण है। कौच ने सन् १८७८ में यह सिद्ध किया था कि प्रत्येक बीमारी किसी-न-किसी रोगाणु के द्वारा ही पैदा होती है। यह रोगकीट भिन्न-भिन्न प्रकार के तथा बहुत छोटे होते हैं। इनमें से कई तो अतिक्षुद्र होने से दिखाई भी नहीं देते। ये साधारणतया ०.००३ से ०.००५ मिलीमीटर तक लम्बे होते हैं, परन्तु कई रोगाणु काफी बड़े होते हैं।

छोटे-से-छोटे रोगकीट ०.०००२५ मिलीमीटर लम्बे होते हैं। ये अँधेरे में बढ़ते हैं। बैसिलस कॉली नामक एक कृमि लगभग बीस मिनट में टूटकर दो कृमि उत्पन्न कर देता है। फिर ये कृमि भी इसी प्रकार विभक्त होते रहते हैं। यदि परिस्थितियाँ अनुकूल हों तो यह अकेला कृमि केवल आठ घण्टे में एक करोड़ साठ लाख कृमि उत्पन्न कर देगा। यदि रोगाणु इसी गति से बढ़ते रहते तो समस्त भूमण्डल पर केवल कृमि-ही-कृमि होते; परन्तु ऐसा होता नहीं, क्योंकि परिस्थितियाँ अनुकूल न होने के कारण एक-दो दिन में तो क्या एक सप्ताह में भी बहुत कम बढ़ पाते हैं। ये रोगकीट जल, वायु तथा अन्न के साथ शरीर में प्रविष्ट हो जाते हैं और फिर धीरे-धीरे बढ़ते रहते हैं तथा व्यक्ति को रोगी बना देते हैं, अतः व्याधियों की रोकथाम इन रोगाणुओं को नष्ट करके ही सम्भव हो सकती है।

यह हुआ आधुनिक विज्ञानवादियों का मत। प्राचीन ऋषियों का सर्वस्व तो वैदिक विज्ञान ही था। उसी आधार पर उन्होंने अग्निहोत्र का आविष्कार किया। समिधाओं तथा हव्य-पदार्थों का चयन भी किया। इसलिए केवल रोगोत्पत्ति के आधुनिक कारण को ही आधार मानकर यज्ञ पर विचार करना उचित नहीं होगा, अतः विचारणीय विषय है—रोगों का वेद में वर्णित कारण। वेद भी रोगाणुवाद को मानता है।

अन्वान्त्रयं शीर्षण्य१मथो पार्ष्टेयं क्रिमीन्।
अवस्कवं व्यध्वरं क्रिमीन्वचसा जम्भयामसि॥

—अथर्व० २।३१।४

"आँतों में उत्पन्न होनेवाले विषूचिका के कीट, शिरोभाग में उत्पन्न होनेवाले दाद, खाज और पीनस रोग के उत्पादक तथा पसलियों में उत्पन्न होनेवाले नासूर या राजयक्ष्मा आदि रोग के कीट, (अवस्कवं) त्वचा के भीतर घुस जानेवाले रोगकीट और विकृत मांस को खानेवाले व्यध्वर नामक रोगकीट को वेदवाणी में बतलाये उपायों द्वारा नष्ट करें।" इस मन्त्र में भिन्न-भिन्न रोगों की उत्पत्ति रोगाणुओं के द्वारा बतलाई गई है।

रोगाणुओं की भिन्न-भिन्न जातियों का वर्णन अथर्ववेद (२।३१।२) में किया गया है—

दृष्टमदृष्टमतृहमथो कुरूरुमतृहम्।
अल्गण्डून्त्सर्वाञ्छलुनान्क्रिमीन्वचसा जम्भयामसि॥

"दृश्य तथा अदृश्य और (कुरूरु) बुरी तरह रुलानेवाले (अलाण्डू) अत्याधिक खाज पैदा करनेवाले तथा (शलुन) शरीर में प्रवेश कर जानेवाले रोगकीटों का वेदवाणी में बताये उपायों द्वारा नाश करें।"

ये मन्त्र रोगाणु सम्बन्धी कई रहस्यों का उद्घाटन कर रहे हैं। इन मन्त्रों में अवस्कव, व्यध्वर, कुरूरु, अलाण्डू तथा शलुन आदि जो शब्द आए हैं, वे रोगकीटों की जातियों के नाम हैं। इन नामों से कृमियों के स्वभावों का पता चलता है। वेद में रोगाणुओं के लिए निम्नलिखित नाम भी आए हैं—

निशाचर	—	रात्रि में संचरण करनेवाला
शर्व, निहन्ता, काल	—	प्राणों का हरण करनेवाले
भीम	—	भयङ्कर
घोर	—	भयानक
यज्ञघ्न	—	जिनकी मृत्यु यज्ञ से हो

वेद ने रोगकीट को राक्षस की संज्ञा भी दी है। ऋग्वेद (१०।९७।६) में राक्षसों को मारनेवाले को वैद्य तथा रोगों को दूर करनेवाला कहा गया है—

यत्रौषधीः समग्मत राजानः समिताविव।
विप्रः स उच्यते भिषग्रक्षोहाऽमीवचातनः॥

अर्थात् "जिसके पास अनेक ओषधियों का संग्रह होता है, उस विप्र को भिषग् (चिकित्सक) कहते हैं। वह राक्षसों का हनन करनेवाला तथा रोगों को दूर करनेवाला होता है।" इस मन्त्र का बुद्धिसङ्गत अर्थ करने के लिए राक्षस को रोगाणु का पर्यायवाची मानना पड़ता है। रोगाणुओं के निवास-स्थान की चर्चा निम्नलिखित मन्त्र में की गई है—

ये क्रिमयः पर्वतेषु वनेष्वोषधीषु पशुष्वप्स्व१न्तः।
ये अस्माकं तन्वमाविविशुः सर्वं तद्धन्मि जनिम क्रिमीणाम्॥

—अथर्व० २।३१।५

"जो रोगजनक कृमि पर्वतों, वनों, ओषधियों, पशुओं और पीने योग्य जलों में रहते हैं तथा जो हमारे शरीर में अन्न और जल के साथ जाते हैं—उन सबका मैं नाश करूँ।"

रोगाणु भोजन आदि के द्वारा शरीर में प्रविष्ट हो जाते हैं।

येऽन्नेषु विविध्यन्ति पात्रेषु पिबतो जनान्।

—यजुः० १६।६२

"जो खाने के अन्न तथा पीने के पानी द्वारा शरीर में प्रवेश करके नाना प्रकार के रोग उत्पन्न करते हैं।"

वेद यज्ञ के द्वारा कृमियों का नष्ट हो जाना सम्भव मानता है—

शर्मास्यवधूतः रक्षोऽ वधूताऽअरातयोऽदित्यास्त्वगसि प्रति त्वादितिर्वेत्तु।

—यजुः० १।१९

कई रोगाणुओं के नाम भी इस बात का प्रमाण हैं कि उनका नाश यज्ञ के द्वारा हो सकता है। उदाहरणार्थ—यज्ञघ्न रोगकीटों की एक जाति है तथा यज्ञघ्न का शाब्दिक अर्थ है—वे रोगकीट जिनकी यज्ञ से मृत्यु हो जाए। अथर्ववेद (२।३१।४) में कृमियों की एक अन्य जाति को व्यध्वर (वि+अध्वर अर्थात् यज्ञ का विरोधी) नाम से कहा गया है। इसीलिए श्री सातवलेकरजी लिखते हैं, "यज्ञ जहाँ न होंगे उस स्थान पर उत्पन्न होकर वृद्धिगत होनेवाले अथवा यज्ञ से जिनका नाश होता है, ऐसे कृमियों को व्यध्वर कृमि बोलते हैं।"

हवन सूर्य के प्रकाश में किया जाता है। रवि-किरणें तथा यज्ञाग्नि दोनों कृमिनाशक हैं। रोगकीट अधिक गर्मी में जीवित नहीं रह सकते।

ओते मे द्यावापृथिवी ओता देवी सरस्वती।
ओतौ म इन्द्रश्चाग्निश्च क्रिमिं जम्भयतामिति॥

—अथर्व० ५।२३।१

"सूर्य की किरणें, मिट्टी, तीव्रवाणी या जलधारा, बिजली, अग्नि ये सब मिलकर नाना प्रकार के रोगकीटों का नाश करते हैं।"

उप प्रागाद्देवो अग्नी रक्षोहामीवचातनः।
दहन्नप द्वयाविनो यातुधानान्किमीदिनः॥

—अथर्व० १।२८।१

इस मन्त्र का अर्थ श्रीयुत् सातवलेकरजी ने इस प्रकार किया है—"यातुधान, किमीदिन तथा राक्षस (यह तीनों रोगकीटों की जातियों के नाम हैं) इनका नाश करनेवाला तथा रोगनाशक अग्निदेव आता है।"

अग्नि तो कृमियों का नाश करने के लिए प्रसिद्ध है। अग्नि में भोजन का विष नष्ट करने की शक्ति है।

अग्नेऽदब्धायोऽशीतम पाहि मा दिद्योः पाहि प्रसित्यै पाहि दुरिष्टै पाहि दुरद्मन्याऽअविषं नः पितुं कृणु॥

—यजुः० २।२०

अर्थात् "हे निर्विघ्न आयु देनेवाले जगदीश्वर ! आप चराचर संसार में व्यापक यज्ञ की दुष्ट अर्थात् वेदविरुद्ध यज्ञ से रक्षा कीजिए, अति दुःखों से बचाइए तथा भारी-भारी बन्धनों से अलग रखिए, जो दुष्ट भोजन करना है उस विपत्ति से बचाइए और हमारे लिए विष आदि दोषरहित अन्नादि पदार्थ उत्पन्न कीजिए ।"[१]

केवल अग्नि में ही रोगाणुनाशक शक्ति हो, ऐसी बात नहीं । यह गुण कई वनस्पतियों में भी है ।

वनस्पतिः सह देवैर्न आगन् रक्षः पिशाचाँ अपबाधमानः ।

—अथर्व० १२।३।१५

"दिव्य गुणों से युक्त वनस्पति आ गई, जो राक्षसों और पिशाचों का नाश करती है ।"

अजशृङ्ग्यज रक्षः सर्वान्गन्धेन नाशय॥

—अथर्व० ४।३७।२

"अजशृंगी नामक ओषधि के गन्ध से सभी राक्षस अर्थात् रोगकीट नाश को प्राप्त होते हैं ।"

यज्ञ-सामग्री में इसीलिए वनस्पतियाँ कूटकर डाली जाती हैं । इनके जलने से सुगन्धि उत्पन्न होती है । इस गन्ध से कृमि मर जाते हैं । स्वास्थ्य-लाभ की यह उत्तम विधि है ।

वेद यज्ञ द्वारा रोगों की चिकित्सा होना सम्भव मानता है—

मुञ्चामि त्वा हविषा जीवनाय कमज्ञातयक्ष्मादुत राजयक्ष्मात् ।
ग्राहिर्जग्राह यद्येतदेनं तस्या इन्द्राग्नी प्र मुमुक्तमेनम्॥

—अथर्व० ३।११।१

"हे व्याधिग्रस्त मनुष्य ! तुझे सुखपूर्वक जीवन व्यतीत कराने के लिए हवन के द्वारा अज्ञात रोगों से तथा तपेदिक जैसे ज्ञात रोग से बचाता हूँ । इसे सब अङ्गों को जकड़नेवाला रोग भी पकड़ ले तो भी इन्द्र अर्थात् शुद्ध वायु या सूर्य की गर्मी या विद्युत् तथा अग्नि— होमाग्नि इसे उक्त रोग से मुक्त करें ।"

ऋषियों ने वेदमन्त्रों में छिपे इन गहन रहस्यों को समझा था । वे

यज्ञों के द्वारा राष्ट्र को स्वस्थ करते थे। सम्भवतः यही कारण था कि यदि एक राष्ट्र ने दूसरे देश को हानि पहुँचानी होती थी तो वह उस देश के यज्ञों में विघ्न डालने का प्रयास किया करता था। यज्ञ की व्यवस्था भङ्ग हो जाने से अनावृष्टि तथा रोग फैल जाते थे; जिससे समस्त राष्ट्र दुःखी हो जाता था। इसीलिए ऋषियों के द्वारा रचाए गए यज्ञों की रक्षा करना राजा का मुख्य कर्त्तव्य समझा जाता था।

आयुर्वेद के चरक, बृहन्निघण्टुरत्नाकर, योगरत्नाकर, गद-निग्रह आदि ग्रन्थों में ऐसे कई योग वर्णित हैं, जिनकी अग्नि में आहुति देने से वायुमण्डल शुद्ध होता है तथा श्वास द्वारा धूनी अन्दर लेने से रोग दूर होते हैं।[५] प्रत्येक रोग का शमन एक ही प्रकार की सामग्री की आहुतियाँ देकर नहीं किया जा सकता। प्राचीन काल में ऋत्वनुसार हवन-सामग्री में परिवर्तन कर दिया जाता था। भिन्न-भिन्न व्याधियों की चिकित्सा भिन्न-भिन्न प्रकार से हव्य-सामग्री के द्वारा की जाती थी। कुछ उदाहरण नीचे दिए जाते हैं—

गर्भ सम्बन्धी विकार

सौंठ तथा दूध को अच्छी प्रकार उबालकर काढ़ा तैयार कर लिया जाए। इस काढ़े तथा घृत की अग्नि में आठ सौ के लगभग आहुतियाँ देने से गर्भ तथा अपरिपक्व अवस्था-सम्बन्धी विकार दूर किए जा सकते हैं।[६]

चेचक

चेचक की चिकित्सा के लिए निम्नलिखित सामग्री लाभप्रद है— सामान्य यज्ञ-सामग्री (२ किलोग्राम), खाँड (५०० ग्राम), सरसों, हरमल (प्रत्येक २५० ग्राम), मुनक्का, मुलहटी, बहेड़ा, नीम की निम्बोली, खूबकलाँ, मेंहदी, हल्दी, चिरायता (प्रत्येक १२५ ग्राम) तथा शहद (५० ग्राम)। इस सामग्री में गोघृत मिलाकर यज्ञ करने से चेचक रोग नष्ट हो सकता है।

क्षय-रोग

ऐसा माना जाता है कि क्षय-रोग यज्ञ करनेवाले को नहीं मार सकता।

कथं ह तत्र त्वं हनो यस्य कृण्मो हविर्गृहे।

—अथर्व० ७।७६।५

क्षय-रोग फैलने पर चन्दन, कपूर तथा सुगन्धित फूलों से बनी धूप-बत्तियाँ

जलाना हितकर है । इस व्याधि के निवारण के लिए आठ-दस दिन निरन्तर यज्ञ किया जाए । प्रतिदिन एक हज़ार आहुतियाँ दी जाएँ । पीपल, आम या ढाक की समिधाओं का प्रयोग किया जाए । पहले दिन गाय के शुद्ध पवित्र घी से यज्ञ किया जाए । फिर तीन दिन चावल, तिल, जौ, जई, मोठ को घी और शहद में भली-भाँति भिगोकर आहुतियाँ दी जाएँ । अगले दो दिन शहद और गोघृत का प्रयोग किया जाए । अन्तिम दो दिनों में ढाक व पीपल की समिधाएँ तथा पुटखण्डा (अपामार्ग) को घी में अच्छी प्रकार भिगोकर डालें ।

रोग की दूसरी व तीसरी अवस्था में निम्नलिखित सामग्री का प्रयोग करना चाहिए—

कपूर, केसर, शहद (प्रत्येक ५ ग्राम), ब्राह्मी, तगर, मकोय, इन्द्रायण की जड़, आँवला, हरड़, बादाम, पुनर्नवा, पानड़ी, बालछड़, मुनक्का मण्डूकपर्णी, शालपर्णी, गुल-सुर्ख, जायफल, असगन्ध, अडूसा, लौंग, विधारा, शतावरी, चीड़ का चूरा, वंशलोचन, पिस्ता, सुगन्धबाला, जयन्ती, खीर काकोली, खूबकलाँ, गोखरू (प्रत्येक २० ग्राम), गिलोय, गूगल (प्रत्येक ८० ग्राम) तथा देशी शक्कर (२०० ग्राम) ।

इस प्रकार यज्ञ द्वारा रोगों का उपचार किया जा सकता है, किन्तु इस क्षेत्र में पर्याप्त अनुसन्धान न होने के कारण अग्निहोत्र का उचित मूल्याङ्कन नहीं हो पा रहा है । निष्पक्ष विद्वानों के समक्ष जितनी सच्चाई आती रही, वे उतना ही यज्ञ से प्रभावित होते रहे । इस कथन की पुष्टि निम्नलिखित प्रमाणों से होती है—

१. चेचक के टीके के आविष्कारक तथा फ्राँस के प्रसिद्ध विद्वान् डॉक्टर हैफकिन का विचार है कि "घृत जलाने से रोगजनक कृमि मर जाते हैं।" भारतीय चिकित्सक तो पुरातन काल से ही घी में कृमिनाशक गुण मानते हैं । आयुर्वेद ने सभी घृतों में गोघृत को उत्तम माना है; इसलिए हवन में अधिकतर इसी का प्रयोग करने का निर्देश है ।

२. फ्राँस के विज्ञानवेत्ता ट्रिलवर्ट कहते हैं—"जलती हुई शक्कर में वायु-शुद्ध करने की बहुत बड़ी शक्ति होती है । इससे क्षय, चेचक, हैज़ा आदि रोग तुरन्त नष्ट हो जाते हैं ।"[७]

३. डॉक्टर एम. ट्रैल्ट ने मुनक्का, किशमिश आदि सूखे फलों को (जिनमें शक्कर अधिक होती है) जलाकर देखा है । आप इस निर्णय पर पहुँचे हैं

कि इनके धुएँ में टायफाइड ज्वर के रोगकीट केवल तीस मिनट तथा दूसरी व्याधियों के रोगाणु घण्टे-दो घण्टे में मर जाते हैं।[८]

४. प्लेग के दिनों में अब भी गन्धक जलाई जाती है, क्योंकि इससे रोगकीट नष्ट होते हैं। अंग्रेज़ी शासनकाल में डॉ० कर्नल किङ्ग, आई.एम.एस., मद्रास के सेनेटरी कमिश्नर थे। उनके समय में वहाँ प्लेग फैल गया। तब १५ मार्च, १८९८ को मद्रास विश्वविद्यालय के विद्यार्थियों के समक्ष भाषण देते हुए उन्होंने कहा था—"घी और चावल में केसर मिलाकर अग्नि में जलाने से प्लेग से बचा जा सकता है।" इस भाषण का सार श्री हैफकिन ने 'ब्यूबानिक प्लेग' नामक पुस्तक में देते हुए लिखा है, "हवन करना लाभदायक और बुद्धिमत्ता की बात है।"

५. अमरीका के एक डॉक्टर ने एक बार बम्बई में भाषण देते हुए कहा था, "हम लोग सैंकड़ों वर्ष से इस खोज में थे कि फेफड़ों की तपेदिक को गैस की सुगन्धि से अच्छा किया जा सके। अब हम इसमें सफल हो गए हैं और इस चिकित्सा का परिणाम सब चिकित्सकों से बेहतर रहा।"[९]

६. डॉ० फुन्दनलाल अग्निहोत्री, मध्यप्रदेश में, राजकीय टी०बी० सेनेटोरियम में मेडिकल ऑफिसर थे। वहाँ आपने यज्ञ के द्वारा तपेदिक के रोगियों की चिकित्सा की थी तथा ८० प्रतिशत रोगियों को इस विधि से पूर्ण लाभ हुआ।[१०]

वस्तुतः उपर्युक्त सभी कथन सत्य हैं। पूर्व वर्णित पदार्थों को जलाने से जो गैसें उत्पन्न होती हैं उनमें कृमिनाशक गुण विद्यमान हैं। यज्ञ में इनके अतिरिक्त और भी द्रव्य डाले जाते हैं, अतः यज्ञ से उत्पन्न होनेवाली सभी गैसें तो और भी अधिक सुख का कारण हैं। ये विद्वान् तो यज्ञ का कुछ भाग ही समझकर उसे इतना उपयोगी बता रहे हैं। यदि कहीं वे यज्ञ के पूर्ण विज्ञान को समझ लें तो अग्निहोत्र का बहुत प्रचार हो सकता है।

अब यज्ञ से उत्पन्न होनेवाली कुछ गैसों के कृमिनाशक गुणों की चर्चा की जाती है।

फार्मेल्डीहाइड

फार्मेल्डीहाइड एक कार्बनिक पदार्थ है। यह यज्ञ में भिन्न-भिन्न क्रियाओं के द्वारा काफी मात्रा में उत्पन्न होता है। डॉक्टर एम. ट्रेल्ट ने लकड़ी के

धुएँ में फार्मेल्डीहाइड को विद्यमान पाया है। यह शक्तिशाली कृमिरोधक, लाभदायक कृमिनाशक तथा धूल को कृमिरहित करनेवाला माना गया है। यह वाष्पशील होने के कारण शीघ्र ही सर्वत्र फैल जाता है। यह धागे के रङ्ग को खराब किए बिना कपड़ों के बीच में से निकल जाता है; इसलिए रोगियों के कमरों को स्वच्छ बनाने के लिए इसका प्रयोग किया जाता है।[११]

फार्मेल्डीहाइड से बहुत लाभ उठया जाता रहा है। इसके द्वारा घरों के कृमियों का नाश तथा वायु को सुगन्धित कियां जाता है। वायु की शुद्धि के लिए फार्मेल्डीहाइड लैम्प बनाए गए। इन लैम्पों में मेथिल एल्कोहॉल तथा वायु को गर्म प्लैटिनम के ऊपर जलाकर फार्मेल्डीहाइड बानाया जाता है (समीकरण २०)।

फार्मेल्डीहाइड के साथ कुछ पानी भी उत्पन्न होता है। फार्मेल्डीहाइड जल की विद्यमानता में ही कृमियों का नाश करता है। इसे सुखद संयोग समझिए कि यज्ञ में जहाँ अन्य कारणों से फार्मेल्डीहाइड बनता है, वहाँ उपरलिखित विधि से भी इसकी उत्पत्ति होती है। हवन करने से जो हाइड्रोकार्बन पैदा होती हैं, उनके ऑक्सीकृत होने पर मेथिल एल्कोहॉल बनने की सम्भावना है। अग्निहोत्र के तापांश पर यह मेथिल एल्कोहॉल फार्मेल्डीहाइड में परिवर्तित हो जाता है। यज्ञ में काफी मात्रा में भाप भी बनती रहती है। यह भाप तथा अन्य गैसें सर्वत्र फैल जाती हैं। इसलिए जहाँ-जहाँ फार्मेल्डीहाइड होता है वहाँ कुछ मात्रा में पानी भी विद्यमान होने से कृमिनाशक क्रिया होती रहती है, अतः हवन जिस प्रकार वायु को शुद्ध और कृमिरहित करता है, आधुनिक विज्ञान की विधि भी वैसी ही है। सम्भवतः इसीलिए कर्नल किङ्ग आई.एम.एस. ने कहा था, ''घरों के कृमियों के नाश करने की हिन्दुओं की विधि आधुनिक ढङ्ग के अनुसार थी।'' ब्रिटिशकालीन मद्रास के गवर्नर लार्ड एम्पथिल ने तो यज्ञ के समर्थक महर्षि मनु को विश्व के प्रसिद्धतम एवं महानतम स्वास्थ्य सम्बन्धी सुधारकों में माना है।

फार्मेल्डीहाइड अनेक कृमियों—उदाहरणार्थ बैसिलस सबटिलिस, बैसिलस कोलाई, काम्युनिस, बैसिलस एन्थ्रेसिस आदि को नष्ट करता है। सर्वप्रथम कोच ने यह सिद्ध किया था कि बैसिलस एन्थ्रेसिस कृमि एन्थ्रैक्स नामक व्याधि फैलाता है। इस रोग से प्रायः भेड़ आदि पशु ही ग्रस्त होते हैं, किन्तु कभी-कभी यह व्याधि मनुष्यों को भी लग जाती है। इसके द्वारा

बनाये गये बीजाणु (स्पोर) घास पर कई-कई दिन तक भी बने रह जाते हैं। इससे बैसिलस डिप्थीरिया तथा स्ट्रेप्टोकोकस पायोजिनस ऑरियस आदि रोगकीट नष्ट हो जाते हैं। इसका पाँच प्रतिशत घोल एन्थ्रैक्स के बीजाणुओं को एक से दो घण्टे में नष्ट कर देता है। इसका ४० प्रतिशत घोल १६° सेल्सियस पर बैसिलिस कोलाइ, स्पाइलिम कोलेरो, माइकरो कोकस प्रोडिज्योसस तथा बैसिलिस टाइफोसस (यह टाइफाइड बुखार पैदा करता है) को केवल दस मिनट में; स्टैप्टोकोकस पायोजिनस ऑरियस को बीस मिनट में तथा बैसिलस पायोसयानिस को आधे घण्टे में नष्ट कर देता है।

यज्ञ में फार्मेल्डीहाइड के अतिरिक्त ऐसीटऐल्डिहाइड, पाइरूविक ऐल्डिहाइड, प्रोपिऑनिक ऐल्डिहाइड तथा फरफ्यूरल आदि भी उत्पन्न होते हैं। ये भी कुछ अंश तक रोगाणुनाशक माने गये हैं, परन्तु इनकी कृमिनाशक शक्ति फार्मेल्डीहाइड की अपेक्षा कम है, तो भी वायु को शुद्ध करने में ये भी अपना योग देते ही हैं।

एल्कोहॉल

हवन से मेथिल एल्कोहॉल, एथिल एल्कोहॉल, एलिल एल्कोहॉल, प्रोपिल एल्कोहॉल तथा ऐमिल एल्कोहॉल आदि भी उत्पन्न होते हैं। यद्यपि ऐलिल एल्कोहॉल तथा ब्युटिल एल्कोहॉल आदि में भी कुछ रोगाणुनाशक शक्ति है, परन्तु इनका इस क्षेत्र में क़ोई विशेष महत्त्व नहीं है।

वस्तुतः एल्कोहॉल रासायनिक परिवर्तन के अन्तिम पदार्थ नहीं अपितु यह प्रायः क्रिया के मध्य में बननेवाले पदार्थ हैं, अतः यह ऑक्सीकरण आदि पर ऐल्डिहाइड व अम्ल आदि बनाते रहते हैं; यही इनका सबसे बड़ा लाभ है, क्योंकि इनके द्वारा उत्पन्न होनेवाले पदार्थ बहुत महत्त्वपूर्ण कृमिनाशक हैं।

अम्ल

अग्निहोत्र के समय भिन्न-भिन्न रासायनिक क्रियाओं के द्वारा फार्मिक अम्ल, ऐसीटिक अम्ल, पाइरोलिग्नियस अम्ल, प्रोपिऑनिक अम्ल तथा वैलेरिक अम्ल आदि उत्पन्न होते रहते हैं। घी के अम्लों का आगे ऑक्सीकरण हो जाता है।

इनमें फॉर्मिक ऐसिड शक्तिशाली कृमिनाशक है। यह वायु की शुद्धि करता है। बैसिलस टाइफोसस इसकी विद्यमानता में जीवित नहीं रह

सकता। इसका प्रयोग फलों को बिगड़ने से बचाने के लिए किया जाता है।

व्याधियाँ वनस्पतियों को भी ग्रस लेती हैं, अतः उपज को बढ़ाने के लिए फसल को बीमारी से बचाना अत्यावश्यक है। इस हेतु व्याधिग्रस्त फसलों पर नाना प्रकार की ओषधियाँ छिड़की जाती हैं, पर्याप्त धन व्यय किया जाता है, किन्तु यज्ञ के द्वारा यह व्यय रोका जा सकता है। दूषित वर्षा तथा अपवित्र वायु के कारण पौधों को दूषित भोजन मिलता है, जिससे फसल पर कुप्रभाव पड़ता है। यज्ञ धूम्र सर्वत्र फैलकर वायुमण्डल को रोगाणुरहित कर देता है। अग्निहोत्र के द्वारा वायु और जल की शुद्धि हो जाने से उत्तम अन्नों की उत्पत्ति होती है। इसीलिए कहा है—

देवो वनस्पतिर्जुषेताᳬं हविर्होतर्यज॥ —यजुः० २१।४६

तू यज्ञ कर ताकि वनस्पतियाँ हवि ग्रहण करें।

मूलेभ्यः स्वाहा शाखाभ्यः स्वाहा वनस्वतिभ्यः स्वाहा पुष्पेभ्यः स्वाहा फलेभ्यः स्वाहौषधीभ्यः स्वाहा।

—यजुः० २२।२८

मूल, शाखा, वनस्पति, फल, ओषधि को स्वस्थ रखने के लिए स्वाहापूर्वक यज्ञ करो।

यज्ञ के धुएँ में ऐसीटिक ऐसिड होता है। यह अम्ल पौधे के लिए हितकर है। इसके द्वारा वनस्पतिजगत् में रोग फैलानेवाले कीट मर जाते हैं। इसका ५ प्रतिशत घोल पाँच मिनट में बैसिलस कोलाइ को समाप्त कर देता है। इसकी विद्यमानता में स्पाइलिस कोलेरी भी नहीं पनप सकता।

प्रोपिऑनिक अम्ल बैसिलसटिलिस को मार देता है। शेष अम्ल कमज़ोर कृमिनाशक है, परन्तु वे भी कुछ रोगकीटों पर अपना प्रभाव रखते हैं, अतः इनकी विद्यमानता भी लाभप्रद है।

सौरभिक पदार्थ

कपूर महत्त्वपूर्ण सौरभिक पदार्थ है। कम तापांश पर यह एक साधारण कृमिरोधक है, किन्तु अधिक तापांश (१००° सेल्सियस से ऊपर) पर यह अच्छा कृमिनाशक माना गया है, अतः यज्ञ में उत्पन्न होनेवाला कपूर का धूम्र कृमिनाशक है। कपूर के जलने पर सीनिओल भी बनता है। यह भी कृमिनाशक है। ये पदार्थ कृमियों को भले ही मार न सकें पर उनकी

वृद्धि को अवश्य रोक देते हैं।

हवन से कई प्रकार के सौरभिक पदार्थ बनते हैं। हाइड्रोकार्बनों में नेपथीलीन अधिक उपयोगी है। यह कपड़ों में कीड़े नहीं लगने देती। इसीलिए इसकी गोलियाँ कपड़ों में रक्खी जाती हैं।

फीनोल अच्छा कृमिरोधक है। लिस्टर के युग (१८६७ ई० के लगभग) में इसका बहुत प्रयोग किया जाता था, परन्तु आजकल बेहतर पदार्थ खोज लिए गए हैं; अतः इसका प्रयोग कम हो गया है, तो भी इसके द्वारा कमरों, स्नानागारों, शौचालयों, नालियों तथा हैज़ाग्रस्त स्थानों की शुद्धि अब भी की जाती है। हवन से बननेवाले एनेथोल, क्रिसोल, कार्वाक्रॉल, सैफ्रोल तथा थाइमोल आदि भी फीनोल जाति के पदार्थ हैं। थाइमोल फीनोल की अपेक्षा पच्चीस गुणा शक्तिशाली अपवित्रता एवं कृमिनाशक है। इसका एल्कोहॉल में १० प्रतिशत घोल कवकनाशी तथा पराश्रयी जीवनाशक है। क्रिसोल फीनोल की अपेक्षा अधिक शक्तिशाली कृमिनाशक है। यूँ भी यह कम विषैला है; यह जूँ को मार देता है। मेन्थोल भी जूँ को परे भगा देता है तथा कपूर से अच्छा अपवित्रता नाशक है। इन सभी पदार्थों में गन्दगी से उत्पन्न होनेवाले कीड़े-मकोड़े, मच्छर, पिस्सू आदि को मारने या भगाने का गुण भी है।

कपूर, गूगल, चन्दन, केसर, लोबान, बालछड़, अगर, तगर, नीम के पत्ते आदि कृमिनाशक हैं। इनका धुआँ स्वास्थ्य के लिए लाभप्रद है। गिलोय, नीम के पत्ते तथा घृत के जलाने से जो धूम बनता है, वह मलेरिया बुखार में बहुत लाभदायक है। गिलोय, नीम के पत्ते और शक्कर को अङ्गारों पर जलाकर धूनी देने से जुकाम ठीक हो जाता है। जौ का धुआँ मच्छरों को दूर भगाता है। चावल और खीलों को जलाने से छाती के रोग नष्ट करने में सहायता मिलती है।

अग्निहोत्र के द्वारा लौंग, इलायची, देवदार, चन्दन, यूकेलिप्टस आदि कई प्रकार के तेल बना देते हैं। ये तेल कई यौगिक पदार्थों का मिश्रण होते हैं। ये सभी कृमिनाशक होने के कारण स्वास्थ्य के लिए हितकर माने गए हैं। उदाहरणार्थ—यूकेलिप्टस का तेल शरीर पर लगा लेने से मच्छर नहीं काटते, परन्तु यह प्रभाव इस तेल की गन्ध उड़ जाने पर नष्ट हो जाता है। इस तेल में कोलाई वैसिलस, टेट्राजिन बैसिली, वर्गुले बैसिलस, स्ट्रेप्टोकोकस आदि रोगाणु भी मर जाते हैं।

खुशबूदार तेल वायु को केवल सुगन्धित ही नहीं करते, अपितु उनमें कृमिनाशक शक्ति भी होती है। इनकी गन्ध से जूँ, पिस्सू आदि मर जाते हैं। सम्भवतः इसी कारण कई रोग उन क्षेत्रों में नहीं होते जहाँ फूल लगे हुए हों। हैम्पटन का मत है कि "इन रोगनिरोधियों का वास्तविक लाभ इन कीटाणुओं को मारने में नहीं है अपितु उन्हें ले-जानेवाले खटमल तथा जूँ आदि को परे रखने में है।"[१२]

यज्ञ के द्वारा रोगों का क्षय सम्भव है। आज शारीरिक शक्ति का ह्रास होता जा रहा है, कद घट रहा है, नित्य नई-नई व्याधियाँ उत्पन्न हो रही हैं। यदि अग्निहोत्र की ओर ध्यान दिया जाए तो न केवल व्याधियाँ नष्ट हो जाएँ, अपितु राष्ट्र में आध्यात्मिक वातावरण भी बन जाए, जिसके द्वारा चारित्रिक उत्थान का स्वप्न भी साकार हो सकेगा।

द्रष्टव्य :

१. ऋषि दयानन्द सरस्वती, यजुर्वेदभाषाभाष्य

२. उपरलिखित, तुलना : ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका, वेदविषयविचार, पृष्ठ-४१

३. ऋषि दयानन्द सरस्वती, सत्यार्थप्रकाश, तृतीय समुल्लास

४. तुलना : गोपथब्राह्मण (२।१।१६)
अथो भैषज्ययज्ञा व एते यच्चतुर्मास्यानि ।
तस्मादृतुसन्धिषु प्रयुज्यन्ते । ऋतुसन्धिषु वै व्याधिर्जायते ॥

५. रामनाथ वेदालङ्कार, आर्ष ज्योति, समर्पण शोध संस्थान, साहिबाबाद, १९९१, पृष्ठ-२९२

६. सद्धर्मप्रचारक, २ फाल्गुन, संवत् १९६८

७. सरस्वती, अक्तूबर १९१९

८. भारत सुदशा प्रवर्त्तक, जून १९०३

९. लीडर (इलाहाबाद से प्रकाशित समाचारपत्र, ६ अप्रैल, १९५५

१०. डॉक्टर फुन्दनलाल अग्निहोत्री, यज्ञ-चिकित्सा (१९४६); हवन-यज्ञ द्वारा क्षयरोग की चिकित्सा (१९५६)

११. Akhil Ranjan Majumdar, Modern Pharmacology and Therapeutic Guide, Calcutta Scientific Publications 1957

१२. Hampton, The Scent of Flowers and Leaves

वृद्धि को अवश्य रोक देते हैं ।

हवन से कई प्रकार के सौरभिक पदार्थ बनते हैं । हाइड्रोकार्बनों में नेपथीलीन अधिक उपयोगी है । यह कपड़ों में कीड़े नहीं लगने देती । इसीलिए इसकी गोलियाँ कपड़ों में रक्खी जाती हैं ।

फीनोल अच्छा कृमिरोधक है । लिस्टर के युग (१८६७ ई० के लगभग) में इसका बहुत प्रयोग किया जाता था, परन्तु आजकल बेहतर पदार्थ खोज लिए गए हैं; अतः इसका प्रयोग कम हो गया है, तो भी इसके द्वारा कमरों, स्नानागारों, शौचालयों, नालियों तथा हैज़ाग्रस्त स्थानों की शुद्धि अब भी की जाती है । हवन से बननेवाले एनेथोल, क्रिसोल, कार्वाक्रॉल, सैफ्रोल तथा थाइमोल आदि भी फीनोल जाति के पदार्थ हैं । थाइमोल फीनोल की अपेक्षा पच्चीस गुणा शक्तिशाली अपवित्रता एवं कृमिनाशक है । इसका एल्कोहॉल में १० प्रतिशत घोल कवकनाशी तथा पराश्रयी जीवनाशक है । क्रिसोल फीनोल की अपेक्षा अधिक शक्तिशाली कृमिनाशक है । यूँ भी यह कम विषैला है; यह जूँ को मार देता है । मैन्थोल भी जूँ को परे भगा देता है तथा कपूर से अच्छा अपवित्रता नाशक है । इन सभी पदार्थों में गन्दगी से उत्पन्न होनेवाले कीड़े-मकोड़े, मच्छर, पिस्सू आदि को मारने या भगाने का गुण भी है ।

कपूर, गूगल, चन्दन, केसर, लोबान, बालछड़, अगर, तगर, नीम के पत्ते आदि कृमिनाशक हैं । इनका धुआँ स्वास्थ्य के लिए लाभप्रद है । गिलोय, नीम के पत्ते तथा घृत के जलाने से जो धूम बनता है, वह मलेरिया बुखार में बहुत लाभदायक है । गिलोय, नीम के पत्ते और शक्कर को अङ्गारों पर जलाकर धूनी देने से जुकाम ठीक हो जाता है । जौ का धुआँ मच्छरों को दूर भगाता है । चावल और खीलों को जलाने से छाती के रोग नष्ट करने में सहायता मिलती है ।

अग्निहोत्र के द्वारा लौंग, इलायची, देवदार, चन्दन, यूकेलिप्टस आदि कई प्रकार के तेल बना देते हैं । ये तेल कई यौगिक पदार्थों का मिश्रण होते हैं । ये सभी कृमिनाशक होने के कारण स्वास्थ्य के लिए हितकर माने गए हैं । उदाहरणार्थ—यूकेलिप्टस का तेल शरीर पर लगा लेने से मच्छर नहीं काटते, परन्तु यह प्रभाव इस तेल की गन्ध उड़ जाने पर नष्ट हो जाता है । इस तेल में कोलाई बैसिलस, टेट्राजिन बैसिली, वर्गुले बैसिलस, स्ट्रेप्टोकोकस आदि रोगाणु भी मर जाते हैं ।

खुशबूदार तेल वायु को केवल सुगन्धित ही नहीं करते, अपितु उनमें कृमिनाशक शक्ति भी होती है। इनकी गन्ध से जूँ, पिस्सू आदि मर जाते हैं। सम्भवतः इसी कारण कई रोग उन क्षेत्रों में नहीं होते जहाँ फूल लगे हुए हों। हैम्पटन का मत है कि "इन रोगनिरोधियों का वास्तविक लाभ इन कीटाणुओं को मारने में नहीं है अपितु उन्हें ले-जानेवाले खटमल तथा जूँ आदि को परे रखने में है।"[१२]

यज्ञ के द्वारा रोगों का क्षय सम्भव है। आज शारीरिक शक्ति का ह्रास होता जा रहा है, कद घट रहा है, नित्य नई-नई व्याधियाँ उत्पन्न हो रही हैं। यदि अग्निहोत्र की ओर ध्यान दिया जाए तो न केवल व्याधियाँ नष्ट हो जाएँ, अपितु राष्ट्र में आध्यात्मिक वातावरण भी बन जाए, जिसके द्वारा चारित्रिक उत्थान का स्वप्न भी साकार हो सकेगा।

द्रष्टव्य :

१. ऋषि दयानन्द सरस्वती, यजुर्वेदभाषाभाष्य

२. उपरलिखित, तुलना : ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका, वेदविषयविचार, पृष्ठ-४१

३. ऋषि दयानन्द सरस्वती, सत्यार्थप्रकाश, तृतीय समुल्लास

४. तुलना : गोपथब्राह्मण (२।१।१६)
अथो भैषज्ययज्ञा व एते यच्चतुर्मास्यानि ।
तस्मादृतुसन्धिषु प्रयुज्यन्ते । ऋतुसन्धिषु वै व्याधिर्जायते ॥

५. रामनाथ वेदालङ्कार, आर्ष ज्योति, समर्पण शोध संस्थान, साहिबाबाद, १९९१, पृष्ठ-२६२

६. सद्धर्मप्रचारक, २ फाल्गुन, संवत् १९६८

७. सरस्वती, अक्तूबर १९१९

८. भारत सुदशा प्रवर्त्तक, जून १९०३

९. लीडर (इलाहाबाद से प्रकाशित समाचारपत्र, ६ अप्रैल, १९५५

१०. डॉक्टर फुन्दनलाल अग्निहोत्री, यज्ञ-चिकित्सा (१९४९); हवन-यज्ञ द्वारा क्षयरोग की चिकित्सा (१९५६)

११. Akhil Ranjan Majumdar, Modern Pharmacology and Therapeutic Guide, Calcutta Scientific Publications 1957

१२. Hampton, The Scent of Flowers and Leaves

८

वृष्टि

प्राणिमात्र के लिए तीन पदार्थ अत्यावश्यक हैं—वायु, जल और भोजन (अन्न)। मनुष्य तथा पशुओं का तो कहना ही क्या, इनके बिना तो वृक्ष और पौधे भी जीवित नहीं रह सकते। यज्ञ न केवल वायु की शुद्धि करता है, अपितु वनस्पति-जगत् के लिए उपयोगी वर्षा में भी सहायक है।

वेद अग्निहोत्र को वर्षा का सहायक मानता है। इसीलिए यजुर्वेद (१।१६) में यज्ञ को 'वर्षवृद्धम्'—वर्षा का बढ़ानेवाला—कहा गया है। अग्निहोत्र में वर्षा के निमित्त दी गई आहुतियों से वर्षा और वर्षा से जीवों को जीवन, रक्षा, आयु और सुख मिलता है (यजुः० २८।३६)।

यजुर्वेद (१।२५) के निम्नलिखित मन्त्र में भी भक्त का ऐसा ही विश्वास झलकता है—

पृथिवि देवयजन्योषध्यास्ते मूलं मा हिꣳसिषं व्रजं गच्छ गोष्ठानं वर्षतु ते द्यौर्बधान देव सवितः परमस्यां पृथिव्याꣳ शतेन पाशैर्योऽस्मान्द्वेष्टि यं च वयं द्विष्मस्तमतो मा मौक्॥

"हे सूर्यादि जगत् के प्रकाश करने तथा राज्य और ऐश्वर्य के देनेवाले परमेश्वर ! आपकी कृपा से मैं विद्वानों के यज्ञ करने की जगह यह जो भूमि है उसके और जो यवादि ओषधि हैं उनके वृद्धि करनेवाले मूल का नाश न करूँ और मैं अनेक प्रकार सुखदायक भूमि में जिस यज्ञ का अनुष्ठान करता हूँ, वह जल वृष्टिकारक मेघ को प्राप्त हो, वहाँ जाकर सूर्य की किरणों के गुणों से वर्षाता है....."[१]

अथर्ववेद (४।१५।१६) में कहा है—

तन्वतां यज्ञं बहुधा विसृष्टा।

अर्थात् जब वर्षा कराने की आवश्यकता हो तब बहुत-से यज्ञ विविध प्रकार से करने चाहिएँ।

मनु महाराज कहते हैं—

अग्नौ प्रस्ताहुतिः सम्यगादित्यमुपतिष्ठते ।
आदित्याज्जायते वृष्टिर्वृष्टेरन्नं ततः प्रजाः ॥

—मनु० ३।४८

अग्नि में दी गई आहुति सूर्यमण्डल में पहुँचती है, उससे बादल बनते हैं, वर्षा होती है, उससे अन्न की उत्पत्ति होती है, जिससे प्रजाओं की उत्पत्ति और जीवन चलता है ।

योगेश्वर श्रीकृष्ण का सन्देश है—

अन्नाद् भवन्ति भूतानि पर्जन्यादन्नसम्भवः ।
यज्ञाद् भवति पर्जन्यो यज्ञः कर्म समुद्भवः ॥

—गीता ३।१४

अर्थात् यज्ञ से मेघ, मेघ से वर्षा, वर्षा से अन्न की उत्पत्ति होती है ।

ऋषि दयानन्द द्वारा रचित ग्रन्थों—विशेषतया वेदभाष्य में ऐसे सङ्केत मिलते हैं जिनसे लगता है कि ऋषिवर यज्ञ द्वारा वृष्टि सम्भव मानते हैं। इस प्रसङ्ग में ऋग्वेद (५।५३।५, ५।५८।२), यजुर्वेद (१।१३, १४, १।१६) भाष्य तथा ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका के वेदविषयविचार- प्रकरण में शतपथ-ब्राह्मण (५।३) के कोष्ठक में अङ्कित मन्त्रों अथवा वचनों का भावार्थ एवं सरलार्थ मननीय हैं ।

अग्निहोत्र द्वारा होनेवाली वर्षा अधिक लाभप्रद है, क्योंकि यज्ञ के द्वारा जो मेघ बनते हैं, वे दोषरहित होते हैं, अतः वृष्टिजल भी शुद्ध होता है। इस कारण सभी पदार्थों में पवित्रता आ जाती है । महर्षि दयानन्द[२] ने इस प्रसङ्ग में लिखा है—"यज्ञ से जो भाप उठता है वह भी वायु और जल को निर्दोष और सुगन्धित करके सब जग को सुख करता है ।" "शुद्ध जल और वायु के द्वारा अन्नादि ओषधि भी अत्यन्त शुद्ध होती है। ऐसे प्रतिदिन सुगन्ध के अधिक होने से जगत् में नित्यप्रति अधिक-अधिक सुख बढ़ता है । यह यज्ञ-अग्नि में होम करने के बिना दूसरे प्रकार से होना असम्भव है ।"

आज विश्व में अणुविस्फोट किए जा रहे हैं, इनसे वायुमण्डल दूषित और दुर्गन्धयुक्त हो रहा है । फिर इस प्रकार होनेवाली वृष्टि से उत्पन्न वनस्पति भी इन दोषों से पूर्ण होती है । यदि प्रयोगों की यह शृङ्खला इसी प्रकार चलती रही तो भावी सन्तानों के स्वास्थ्य पर इसका दुष्प्रभाव

पड़ेगा । इसके विपरीत यज्ञ की सुगन्धि वृष्टिजल को शुद्ध करके मनुष्य के कद, भार, रूप-लावण्य पर सुखद प्रभाव डालती है ।

यज्ञ से वृष्टि किस प्रकार होती है—इस समस्या का समाधान वैदिक-वृष्टि विज्ञान के क्षेत्र में पर्याप्त अनुसन्धान की माँग करता है, तो भी शास्त्रकारों से यह प्रश्न सम्भवतः अछूता नही रहा । शतपथब्राह्मण (५।३।५।१७) ने तो स्पष्ट कहा है—

अग्नेर्वै धूमो जायते धूमादभ्रमभ्राद् वृष्टिः ।

अर्थात् अग्नि से धूम, धूम से बादल और मेघ से वृष्टि होती है।

इस विचार से पाश्चात्य विद्वान् भी सहमत दीख पड़ते हैं । डॉक्टर हार्टनिङ्ग ने लिखा है "अफ्रीका के जङ्गल में घास-फूँस के बड़े भारी ढेर के जलाने से वहाँ भी जहाँ वर्षा की आशा न थी, मेंह आ गया, अतः मेंह बरसाने के लिए आग का जलाना गुणकारी है ।"[३] अमरीकी विद्वान् एण्ड्रो जेक्सन डेविस ने 'मेंह बरसाने का विज्ञान' शीर्षक लेख में वर्षा के लिए जो सिद्धान्त दिया है,, वह यज्ञ के सिद्धान्त से मिलता-जुलता है ।[४] यज्ञ-धूम में धूलिकणों की बहुलता होती है । लकड़ी के जलने से भी कुछ कार्बन धूल बन जाती है । कई अन्य पदार्थ भी अच्छी प्रकार जले बिना वायु में मिल जाते हैं । इन कणों के चारों ओर पानी जमकर आकाश को मेघाच्छादित कर देता है ।

वैज्ञानिक धूल को वर्षा में सहायक मानते हैं । एटकन ने सिद्ध किया है कि वायु में घूमनेवाले सभी प्रकार के धूलकण जलयुक्त पवनों के ठण्डा होकर जमने के लिए "जामन" का कार्य करते हैं । यदि वायु में ये धूलकण न हों तो पवन को ठण्डा करने के लिए तापांश का अधिक कम होना अनिवार्य है । यदि धूलरहित नमीयुक्त वायु में से पराबैंगनी किरणें या सूर्य की साधारण किरणें भी गुज़रने दी जाएँ तो इस न्यूनता की कुछ अंश तक पूर्ति हो सकती है । धनात्मक विद्युत् की अपेक्षा ऋणात्मक विद्युत् से युक्त धूलिकण पानी के जमाव में अधिक उपयोगी सिद्ध हुए हैं । वर्षा में विद्युत् का भी कुछ लाभ है । इस प्रकार का भाव निम्नलिखित मन्त्र से प्रकट होता है—

अपामग्निस्तनूभिः संविदानो य ओषधीनामधिपा बभूव।
स नो वर्षं वनुतां जातवेदाः प्राणं प्रजाभ्यो अमृतं दिवस्परि॥

—अथर्व० ४।१५।१०

अर्थात् "मेघ में स्थित जलों की विद्युत् जलों के शरीरभूत मेघों से मिलकर रहती है, जोकि वनस्पतियों का स्वामी=पालक है।' वह समस्त पदार्थों में व्यापक अग्नि हमारे लिए वृष्टि को और आकाश से बरसते अमृतरूपी जल को और पशुओं के लिए प्राण देवें। वायु के सङ्घर्ष से मेघों में बिजली उत्पन्न होती है। वह ऋण और धनरूप में पैदा होकर पुनः परस्पर मिलती है और कड़कती है। उससे जलों में विशेष प्रकार प्राणशक्ति और मेघों के जलों की वृद्धि भी होती है। ओषधियाँ अधिक जल पातीं और प्रजाएँ सुखी होती हैं।"[५]

वर्षा में बिजली के महत्त्व को नकारा नहीं जा सकता। सम्भवतः यज्ञ भी सर्वप्रथम आकाश में बिजली भरता है, फिर मेघ बनते हैं और वर्षा होती है। अग्निहोत्र के द्वारा धूम पैदा होता है, जिसमें पर्याप्त मात्रा में वाष्प, धूलिकण आदि रहते हैं। वैज्ञानिकों ने धूम को वायु में बहुत सूक्ष्म कणों का कोलॉइडी विलयन (घोल) माना है। वायु में तैरनेवाले इन सभी कोलॉइडी कणों में ऋणात्मक विद्युत् होती है तथा एटकन के मतानुसार ऋणात्मक विद्युत् से युक्त कण ही वर्षा में सर्वाधिक सहयोगी हैं। हवन करते समय कुछ घृत बिना जले ही अति सूक्ष्म कणों के रूप में उड़ जाता है। यह घी बहुत-से धूलिकणों पर अपनी परत जमा देता है। इस प्रकार के सभी कण प्रायः बिजली से युक्त पाए गए हैं। इनमें नमी चूसने की विशेष शक्ति होती है। इनपर जब नमी की एक परत जम जाती है तो और नमी खिंचती चली जाती है। इस प्रकार मेघ बनाने में इन कणों का महत्त्वपूर्ण योग है।

अग्निहोत्र केवल मेघ बनाता ही नहीं, अपितु उन्हें बरसाने में भी सहायता करता है। मेघों के बरसने के लिए वायु में नमी की बहुलता का होना अनिवार्य है। प्रत्येक तापांश पर वायु में एक विशेष सीमा तक ही नमी रह सकती है। हवा जितनी अधिक गर्म होगी, उतना ही अधिक जल धारण कर सकेगी। हवन के कारण तापमान कुछ बढ़ जाता है, अतः वायु पर्याप्त नमी खींच लेती है, फिर हवन के द्वारा नीचे की वायु गरम होकर हलकी हो जाती है, अतः यह वायु ऊपर चढ़ते समय मेघ को भी अपने साथ ले-जाती है (दृष्टव्य यजुः० ६।१६)। यहाँ तापांश की न्यूनता के कारण वायु समस्त नमी को धारण करने में असमर्थ हो जाती है। तब मेघ बरसने लगते हैं।

यज्ञ के द्वारा वर्षा केवल दिमाग़ी दौड़ नहीं है, अपितु वास्तविकता है।

प्राचीन भारत में हवन के द्वारा वर्षा कराई जाती थी। इस हेतु प्रत्येक नगर और ग्राम में बड़े-बड़े यज्ञों का आयोजन किया जाता था। ग्रामों में आज भी यह प्रथा प्रचलित है, किन्तु इसका स्वरूप विकृत हो चुका है। अनावृष्टि के समय गाँव के सभी लोग मिलकर यज्ञ करते हैं, फिर भारी संख्या में उपस्थित लोगों को भोजन कराया जाता है। उनका विश्वास है कि इस प्रकार इन्द्र देवता प्रसन्न हो जाएँगे तथा वर्षा अवश्य होगी। इस सारे कार्य को ये लोग 'जग' कहते हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि यज्ञ का नाम बिगड़ कर 'जग' बन गया है। (जैसे यजमान का 'जजमान', यमुना का 'जमना' हो गया है।) इस अवसर पर किया जानेवाला हवन इस बात का द्योतक है कि अग्निहोत्र वर्षा में सहायक माना जाता रहा है। आज भी शास्त्रीय विधि के अनुसार यज्ञ करने से वर्षा कराई जा सकती है। इस प्रसङ्ग में छोटे-छोटे प्रयोग कई बार किए जा चुके हैं, जो प्रायः सफल रहे हैं[६,७], परन्तु प्रायः विद्वानों ने वृष्टियज्ञ हेतु प्रयोग की जानेवाली सामग्री की जानकारी अपने लेखों में नहीं दी है। केवल कुछ सङ्केत ही यत्र तत्र मिलते हैं। यथा—

घृतं पवस्व धारया यज्ञेषु देववीतमः।
अस्मभ्यं वृष्टिमा पव॥ —ऋ० ९।४९।३
घृत वद्भिश्च हव्यैः॥ —ऋ० ७।३।७
सं बर्हिरक्तं हविषा घृतेन॥ —अथर्व० ७।९८।१

इन मन्त्रों में वृष्टि-यज्ञ के लिए घृत हव्य द्रव्य माना है।

पयः सोमो दधातु मे। सोमाय स्वाहा॥

—अथर्व० १६।४३।५

अर्थात् सोम के निर्माण-हेतु पय (पेय-जल, अन्न, औषधि, वनस्पति, दूध, घी आदि) की आहुति देनी चाहिए।

कृत्रिम वर्षा के क्षेत्र में वैज्ञानिक अनुसन्धान करते रहे हैं। कुछ सफलता भी मिली है। जब आकाश में मेघ छाए हुए होते हैं तो उनके ऊपर खुश्क बर्फ छिड़क दी जाती है। इससे बादलों का तापांश कम हो जाता है तथा १५-२० मिनट के बाद वर्षा होनी प्रारम्भ हो जाती है। इस प्रकार न बरसनेवाले मेघों को भी बरसाया जा सकता है। आस्ट्रेलिया तथा अमरीका में इस विधि का लाभ उठाया गया है। ऋग्वेद (८।३२।२६) ने भी इस विधि की ओर सङ्केत किया है—

अहंन्वृत्रमृचीषम और्णवाभमहीशुवम्। हिमेनाविध्यदर्बुदम्॥

अर्थात् चमक-दमकवाले तथा सर्प की भाँति गति करनेवाले मेघों को विद्युत् फाड़ता है तथा मेघों को बर्फ के द्वारा बींधता है।

हवन के द्वारा बादलों को केवल बरसाया ही नहीं जाता अपितु बादलों का निर्माण भी किया जा सकता है, अतः यदि आकाश मेघाच्छादित न हो तो भी वर्षा की जा सकती है।

अनावृष्टि की भाँति अतिवृष्टि भी भयङ्कर समस्या खड़ी कर देती है। इसके कारण दैनिक कार्य करने भी कठिन हो जाते हैं। नदियों में बाढ़ आ जाती है। इस प्रकार राष्ट्र के जन, धन एवं समय की अपार हानि होती है, अतः अतिवृष्टि पर नियन्त्रण करना अत्यावश्यक है। वेद ने इस कार्य को सम्भव माना है। यजुर्वेद (१५।६) में स्पष्ट शब्दों में आदेश है—

विष्टम्भेन वृष्ट्या वृष्टिं जिन्व।

अर्थात् वर्षा के रोकने के द्वारा वृष्टि को जीतो।

परन्तु यह कार्य हो किस प्रकार ? आधुनिक विज्ञान इस क्षेत्र में अभी कोई सफलता प्राप्त नहीं कर पाया है। वैसे इसके लिए दो विधियाँ दिखाई पड़ती हैं—

प्रथम—हवन के द्वारा आकाश में ऐसे द्रव्य भर दिए जाएँ कि आकाश में छाये हुए बादल बरसने में समर्थ न हो सकें। इस हेतु पूर्ण विधि का निर्माण तथा यथेष्ट पदार्थों का चयन करने के लिए अनुसन्धान की आवश्यकता है।

द्वितीय—बादलों को ऐसे स्थानों पर भेज दिया जाए जहाँ वर्षा न होती हो। फिर उस स्थान पर उन्हें ठण्डा करके बरसा दिया जाए।

वायु की दिशा बदलकर इस कार्य में सफलता प्राप्त की जा सकती है। जिस ओर पवनें जाती हैं, मेघ भी उसी ओर चल पड़ते हैं। इसका सङ्केत अथर्ववेद (४।१५।६) में किया है—

मरुद्भिः प्रच्युता मेघाः प्रावन्तु पृथिवीमनु॥

अर्थात् वायुओं से प्रेरित मेघ पृथिवी की ओर खूब जोर से उमड़कर आवें।

इसी प्रकार एक और मन्त्र में कहा है—

उदीरयत मरुतः समुद्रतस्त्वेषो अर्को नभ उत्पातयाथ।
महऋषभस्य नदतो नभस्वतो वाश्रा आपः पृथिवीं तर्पयन्तु॥

—अथर्व० ४।१५।५

अर्थात् हे जलयुक्त पवनो ! समुद्र के मध्य से ऊपर उठकर आओ और मेघों को उड़ा लाओ। तेज चमकता हुआ सूर्य मेघ को ऊपर उड़ाए। गरजते हुए वायु से प्रेरित वर्षा के बड़े मेघ की छमछम करती जल-धाराएँ बरसकर पृथिवी को तृप्त कर दें।[५]

इस सिद्धान्त का प्रतिपादन ऋग्वेद (१।८५।३) में भी किया है—

गोमातरो यच्छुभयन्ते अञ्जिभिस्तनूषु शुभ्रा दधिरे विरुक्मतः
बाधन्ते विश्वमभिमातिनमप वर्त्मान्येषामनु रीयते घृतम्॥

अर्थात् सूर्य, पृथिवी एवं वायु बिजलियों से शोभा पाते हैं तथा अपने शरीरों में भिन्न-भिन्न कान्ति से युक्त बादलों को धारण करते हैं, अलग-अलग दिशाओं में फैलनेवाले मेघों को पीड़ित करते हैं, इस कारण जिस ओर वायु आदि जाती हैं, उस मार्ग पर ही मेघ का जल भी जाता है।

पवनों की दिशा बदलने से मेघों का मार्ग परिवर्तित किया जा सकता है। इसके लिए यज्ञ द्वारा अल्प-वृष्टि के क्षेत्रों में वायु का दबाव कम कर दिया जाए और फिर अधिक वर्षा के क्षेत्रों से इन मरुभूमियों की ओर संवहनी पवनें चलाई जाएँ तो मेघ भी उनके साथ उधर आ जाएँगे। इस सारी प्रक्रिया को पूर्ण करने के लिए हवन-यज्ञ की विशेष आवश्यकता अनुभव होती है, क्योंकि तापांश एवं वायु के दबाव की यह भिन्नता अग्नि के बिना सम्भव नहीं। इसलिए ऋग्वेद (१।७९।२) में कहा है—

आ ते सुपर्णा अमिनन्तँ एवैः कृष्णो नोनाव वृषभो यदीदम्।
शिवाभिर्न स्मयमानाभिरागात् पतन्ति मिहः स्तनयन्त्यभ्रा॥

अर्थात् हे अग्ने ! जब तेरी उत्तम शक्तियाँ सब ओर से मेघ पर आघात करती हैं, तब काले रङ्ग का बरसनेवाला बादल इधर की ओर झुकता है। वह शान्तिदायक मुस्कराती हुई बिजलियों से युक्त हो जाता है, फिर मेह गिरता है और मेघ गरजते हैं।

यदि इन वेद-मन्त्रों के आधार पर खोज की जाए तो सम्भवतः अतिवृष्टि से भी बचा जा सकता है।

जहाँ अग्निहोत्र वर्षा में सहायक है, वहाँ इसके द्वारा भूमि की उर्वरता

भी बढ़ाई जा सकती है। वस्तुतः पौधों के लिए नाइट्रोजन का केवल नाइट्रेट के रूप में ही लाभ उठा सकते हैं। वनस्पतियों को कुछ नाइट्रेट तो खाद द्वारा प्राप्त हो जाते हैं। शेष कमी को नाइट्रीफाइङ्ग बैक्टीरिया या चना, मटर आदि पौधों की जड़ों में रहनेवाले सहजीवी बैक्टीरिया पूरी कर देते हैं, परन्तु यदि हवन की गैसों को कुछ दिन खेत की मिट्टी के ऊपर से गुज़ारा जाए तो भूमि की नाइट्रीकारी शक्ति बढ़ जाती है। इस प्रकार हवन वनस्पति-जगत् के लिए भी लाभदायक है।

यदि इस क्षेत्र में गम्भीर अन्वेषण किया जाए तो यजुर्वेद (२२।२२) में की गई भक्त की प्रार्थना— **निकामेनिकामे नः पर्जन्यों वर्षतु** जब-जब हम इच्छा करें तब-तब मेघ बरसें—प्रभु स्वीकार करेंगे।

द्रष्टव्य :

१. ऋषि दयानन्द सरस्वती, यजुर्वेदभाष्य, दयानन्द संस्थान, दिल्ली

२. ऋषि दयानन्द सरस्वती, ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका

३. मास्टर आत्माराम, वैदिक विवाह-आदर्श, पृष्ठ-२६८

४. एण्ड्रो जेक्सन डेविस, हारमोनीकल मैन, पृष्ठ ३१-१३१

५. पण्डित जयदेवकृत अथर्ववेदभाष्य

६. पण्डित वीरसेन वेदश्रमी ने इस क्षेत्र में कुछ कार्य किया है। उनकी "वैदिक वृष्टि-विज्ञान" नामक लघु पुस्तकें वेद सदन, ७२ महारानी पथ, इन्दौर (मध्यप्रदेश) से प्रकाशित हुई हैं।

७. परोपकारी, जुलाई १९९२

परिशिष्ट १

ऋत्वनुकूल यज्ञ-सामग्री का एक योग नीचे दिया जाता है। इस आध किलोग्राम सामग्री में ११० ग्राम खाण्ड या बूरा तथा ७५ ग्राम गोघृत मिला देना चाहिए।

बसन्त ऋतु (चैत्र, वैशाख)

केसर (१ ग्राम), जावित्री (३ ग्राम), लज्जावती (६ ग्राम), अगर, दालचीनी, तेजबल, चिरायता, खस, तगर, तालीसपत्र, छरीला, पत्रज, इन्द्रजौ, जायफल, कमलगट्टा, मजीठ, कपूरकचरी, गोखरू (प्रत्येक १५ ग्राम), कपूर (२० ग्राम), दाख, देवदार, गिलोय, गूगल, गूलर की छाल (प्रत्येक ४० ग्राम), चन्दन—लाल, पीला, श्वेत (४५ ग्राम)।

ग्रीष्म ऋतु (ज्येष्ठ, आषाढ़)

केसर (१ ग्राम), नागरमोथा, पीला व लाल चन्दन, बायबिडङ्ग, छरीला, शतावरी, गिलोय, लौंग, दालचीनी, निर्मली, तगर, तालीपत्र, मजीठ, शिलारस, आँवला, बड़ी इलायची, बालछड़, उन्नाव, दारुहल्दी, पद्माख (प्रत्येक १५ ग्राम), कपूर (२० ग्राम), चिरौंजी, गुलसुर्ख, सुपारी (प्रत्येक ३५ ग्राम) मूँग, चावल (प्रत्येक ३७ ग्राम)।

वर्षा ऋतु (श्रावण, भाद्रपद)

बेल (२ ग्राम), सङ्खाहुली, छोटी इलायची (प्रत्येक ६ ग्राम), काला अगर, तगर, इन्द्रजौ, जायफल, तेजपत्र, कपूर, गिलोय, तुलसी के पत्ते व बीज, नागकेसर, बायबिडङ्ग, चिरायता, मोचरस, कपूर कचरी, ब्राह्मी (प्रत्येक १२ ग्राम), उड़द, जौ (प्रत्येक २४ ग्राम), गुग्गल, देवदार, राल, गोला, बालछड़, बच, श्वेत चन्दन का चूरा, छुहारे, नीम के पत्ते (प्रत्येक ३० ग्राम)।

शरद ऋतु (आश्विन, कार्तिक)

केसर (१ ग्राम), जायफल (११ ग्राम), ब्राह्मी, पीला व लाल चन्दन, गिलोय, बड़ी इलायची, नागकेसर, पित्तपापड़ा, मोचरस, दालचीनी, अगर, इन्द्रजौ, भारङ्गी, असगन्ध, शीतलचीनी, पत्रज, चिरायता, सहदेई, धान की खील, तालमखाना (प्रत्येक १२ ग्राम), कपूर (२० ग्राम), बालछड़, गूलर की छाल, कपूरकचरी, गुग्गुल, श्वेत चन्दन, किशमिश (प्रत्येक २० ग्राम),

चिरौंजी (६० ग्राम)।

हेमन्त ऋतु (मार्गशीर्ष, पौष)

केसर (२ ग्राम), रासना, मुश्कबाला, कौंच के बीज (प्रत्येक ६ ग्राम), काली मूसली, मुलहठी, जावित्री, तालीसपत्र, लाल चन्दन, पटोलपत्र, पित्तपापड़ा, कूट, कपूर, सौंफ, भारङ्गी, गिलोय, दालचीनी, पुष्करमूल, गोखरू, बादाम (प्रत्येक १५ ग्राम), देवदार, मुनक्का (प्रत्येक २० ग्राम), अखरोट की गिरी, कपूरकचरी (प्रत्येक २५ ग्राम), गुग्गुल, छुहारे, काले तिल, गोला, तुम्बरु (प्रत्येक ३० ग्राम)।

शिशिर ऋतु (माघ, फाल्गुन)

केसर (१ ग्राम), शंखपुष्पी, कौंच के बीज, भोजपत्र, रेणुका (प्रत्येक ६ ग्राम), कपूर, बायबिडङ्ग, बड़ी इलायची, मोचरस, मुलहठी, गिलोय, तज, चिरायता, तुलसी के बीज व पत्ते, चिरौंजी, काकड़ासीङ्गी, दारु- हल्दी, शतावरी, पद्माख, सुपारी (प्रत्येक १५ ग्राम), छुहारे, अखरोट, चन्दन (प्रत्येक २५ ग्राम), राल, तुम्बरु, बालछड़, गुग्गुल, मुनक्का (प्रत्येक ३५ ग्राम)।

द्रष्टव्य :

तुलना : भवानी प्रसाद, आर्य पर्व-पद्धति, सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा, नई दिल्ली, (सन् १९८४), पृष्ठ ४३-५६; भीमसेन शर्मा तथा हरिदत्त शास्त्री, अभिनव संस्कार चन्द्रिका, भाग १, सत्य प्रकाशन, मथुरा, दयानन्दाब्द १४१, पृष्ठ १०१-३

परिशिष्ट २

पुस्तक में प्रयुक्त कुछ शब्दों का अंग्रेज़ी में पारिभाषिक रूपान्तर

अम्ल	acid
असन्तृप्त	unsaturated
ऑक्सीकरण	oxidation
आसवन-क्रिया	distillation
कृमिनाशक	disinfectant
कृमिरोधक	antiseptic
कवकनाशी	fungicide
खनिज	mineral
गोंद	mucilage
दहन-क्रिया	combustion
जल-विच्छेदन	hydrolysis
जल-हरण	dehydration
तन्तु	fibre
तापांश	temperature
प्रकाश-संश्लेषण	photosynthesis
पराश्रयी जीवनाशक	parasiticide
राल	resin
रासायनिक	chemical
रोगाणु / रोगकीट	germ
वसा	fat
वसीय अम्ल	fatty acid
वाष्पशील	volatile

संगत	corresponding
सगन्ध तेल	essential oil
सन्तृप्त	saturated
सौरभिक पदार्थ	aromatic
शर्करा	sugar

परिशिष्ट ३

अध्याय ६ तथा ७ में वर्णित कुछ वाष्पशील सौरभिक पदार्थ—

Anethol (or p-propenyl anisol), $C_6H_4(OCH_3)$ $(CH: CH. CH_3)$, b.p. $233-34^{o}$.

Borneol, $C_{10}H_{18}O$, from Jatamansi, b.p. 212o.

Carvacrol (or isopropyl-o-cresol i.e. ortho-isomer of thymol), b.p. 236^{o}.

Cineol, $C_{10}H_{18}O$, in Kulanjan and certain cardamom oils, b.p. 176^{o}.

Eugenol, $C_6H_3.(OH).(OCH_3)$ $(CH_2.CH:CH_2)$, b.p. 252^{o}.

Furfurol, $C_4H_3.O.CHO$, in clove oil, cinnamon oil, sandal wood oil, b.p. 161^{o}.

Myristicin, (4-allyl-6-methoxy-1, 2-methylene dihydroxybenzene), $C_{11}H_{12}O_3$, b.p. 172^{o}.

d-Pinene, $C_{10}H_6$, in Kulanjan etc., b.p. 155^{o}.

Safrol, $C_6H_3.(<O.CH_2.O>)$, $(CH_2.CH:CH_2)$, b.p. 485^{o}.

Santalols, $C_{15}H_{24}O$, in Sandal wood, b.p. 301^{o}.

d-Terpineol, $C_{10}H_{18}O$, in cardamom etc. b.p. 217^{o}.

1-α-Terpineol, in wood turpentine and camphor oils

Thymol (or isopropyl-m-cresol), $CH_3.C_6H_3.$ $(OH).$ C_3H_7, b.p. 232^{o}.

परिशिष्ट ४

अध्याय ६ तथा ७ में सांकेतित रासायनिक परिवर्तन नीचे दिए जाते हैं—

$(C_6H_{10}O_5)n$ cellulose	+	$6nO_2$ oxygen	——>	$6nCO_2$ carbon dioxide	+ $5nH_2O$ water	...(1)
$(C_6H_{10}O_5)n$	+	$3nO_2$	——>	$6nCO$ carbon monoxide	+ $5nH_2O$	...(2)
$(C_6H_{10}O_5)n$			——>	$6nC$ carbon	+ $5nH_2O$	...(3)
$2CH_3COOH)$ acetic acid			——>	CH_3COCH_3+ acetone	CO_2+H_2O	...(4)
$2CH_4$ methane			——>	C_2H_2 acetylene	+ $3H_2$ hydrogen	...(5)
$HOCH_2CH(OH)CH_2OH$ glycerol			$-2H_2O$ ——>	$H_2C = CHCHO$ acrolein		...(6)
			O_2 ——>	$2CO_2+HCHO+H_2O$ formaldehyde		...(7)
$HOCH_2CH(OH)CH_2OH$ glycerol			O_2 ——>	$HOCH_2CH(OH)CHO$ glyceraldehyde		
			O_2 ——>	$HOCH_2CH(OH)COOH$ glyceric acid		
			——>	$HOCH(COOH)_2$ tartronic acid		
			——>	$O{=}C(COOH)_2$ mesoxalic acid		...(8)
$HOCH_2CH(OH)CHO$ glyceraldehyde			O_2 ——>	$HOCH_2COCHO$ hydroxypyruvic aldehyde		
			O_2 ——>	$HOCH_2COCOOH$ hydroxpyruvic acid		
			$-CO_2$			

$$\xrightarrow{} HOCH_2CHO$$ glycol aldehyde

$$\xrightarrow{O_2} OHCCHO$$ glyoxal

$$\xrightarrow{O_2} HOOCCOOH$$ oxalic acid

$$\xrightarrow{O_2} CO_2+H_2O \quad ...(9)$$

$$CH_3(CH_2)_7CH=CH(CH_2)_7COOH+O_2 \longrightarrow CH_3(CH_2)_7CHO+OHC(CH_2)_7COOH \quad ...(10)$$

oleic acid → n-nonylic aldehyde

$$CH_3(CH_2)_7CHO+O_2 \longrightarrow CH_3(CH_2)_7COOH \xrightarrow{-CO_2} CH_3(CH_2)_6CH_3 \quad ...(11)$$

nonanoic acid → octane

$$OHC(CH_2)_7COOH \xrightarrow{-CO_2} OHC(CH_2)_6CH_3$$ n-octylic aldehyde

$$\xrightarrow{+O_2} CH_3(CH_2)_6COOH$$ octanoic acid

$$\xrightarrow{-CO_2} CH_3(CH_2)_5CH_3 \quad ...(12)$$ heptane

$$CH_3CH_2CH_2COOH + H_2O \longrightarrow CH_4+HOCH_2CH_2COOH \quad ...(13)$$

butyric acid steam → *B*-hydroxy-propionic acid

$$HOCH_2CH_2COOH \xrightarrow{-H_2O} CH_2=CHCOOH \longrightarrow CH_2=CH_2+CO_2 \quad ...(14)$$

acrylic acid → ethylene

$$CH_3(CH_2)_{14}COOH+4H_2O \longrightarrow C_2H_6+2HO(CH_2)_4OH+C_4H_{10}+CH_3COOH\ 2CH_2=CHCH=CH_2 \quad ...(15)$$

palmitic acid steam → ethane butane acetic acid 1, 3-butadiene

$$CH_4 \xrightarrow[O_2]{450\text{-}500^{\circ}C} CH_3OH \xrightarrow{O_2} HCHO \quad ...(16)$$

methane — methyl alcohol — formaldehyde

$$OCH(CHOH)_4CH_2OH \longrightarrow COOH(CHOH)_4COOH$$

glucose — glucosaccharic acid (saccharic acid)

$$COOH(CHOH)_4CH_2OH \longrightarrow$$

gluconic acid

$$\longrightarrow HOCH(COOH)_2 \quad ...(17)$$

tartronic acid

$$CO_2 + H_2O \xrightarrow{\text{ultraviolet}} HCHO + O_2 \quad ...(18)$$

formaldehyde

$$CH_3COOH + HOH \longrightarrow CH_3OH + HCOOH \quad ...(19)$$

$$2CH_3OH + O_2 \longrightarrow 2HCHO + 2H_2O \quad ...(20)$$